सद्‌गुरवे नमः

महाभारत मीमांसा

छठां : भीष्म पर्व

. दोनों पक्षों का मिलकर युद्ध के नियम बनाना

कौरव-पांडव की सेना इतनी विशाल थी कि पृथ्वी के बड़े भू-भाग के गांव तथा नगरों में बालक, बूढ़े तथा स्त्रियां ही शेष बचे थे। नगर और गांव युवकों से सूने थे। कौरव, पांडव और सोमवंशियों ने मिलकर युद्ध संबंधी कुछ नियम बनाये। वे नियम इस प्रकार हैं–चालू युद्ध संध्या काल में बंद होने पर दोनों पक्ष के लोग परस्पर प्रेम से रहें। उस बीच कोई विपक्ष के साथ शत्रुता का व्यवहार न करे। वाग्युद्ध करने वाले के साथ केवल वाग्युद्ध ही किया जाय। जो सेना से बाहर निकल गये हों, उनको न मारा जाय। रथी को रथवाले से ही युद्ध करना चाहिए। हाथीसवार हाथीसवार से, घुड़सवार घुड़सवार से तथा पैदल वाले पैदल वालों से ही युद्ध करें। जिसमें जैसी योग्यता, इच्छा, उत्साह तथा शक्ति हो उसके अनुसार ही विपक्षी को बताकर और उसे सावधान कर ही उस पर प्रहार करे। जो विश्वास करके असावधान हो अथवा जो युद्ध से घबराया हो, उस पर प्रहार करना अनुचित है। जो एक से युद्ध में लगा हो, शरण में आया हो, पीठ दिखाकर भागा हो, जिसके अस्त्र-शस्त्र और कवच कट गये हों, उसको कदापि न मारा जाय। घोड़ों की सेवा करने वाले सूतों, बोझा ढोने वालों, शस्त्र पहुंचाने वालों, भेरी और शंख बजाने वालों पर कदापि प्रहार न किया जाय। इस प्रकार नियम बनाकर दोनों पक्ष एक दूसरे को देखकर आश्चर्यचकित हुए। इसके बाद दोनों अपने-अपने दल में जाकर अपनी-अपनी जीत का उत्साह भरने लगे (भीष्म पर्व, अध्याय)।

. दिव्य दृष्टि और असंभव उत्पात-सूचक की कल्पना

धृतराष्ट्र अपने पुत्रों की युद्ध घोषणा से दुखी थे। इसी बीच उनके भी पिता वेदव्यास आ गये। उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा–राजन! तुम्हारा परिवार काल के

अधीन होकर परस्पर मरने–मारने के लिए खड़ा है। इस काल–चक्र, दारुण परिणाम को देखकर शोक न करना। यदि इस युद्ध को तुम देखना चाहते हो तो मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि दे दूं, जिससे तुम यहीं बैठे–बैठे युद्ध का सारा दृश्य देख सको। धृतराष्ट्र ने कहा कि मैं अपने कुटुंब का वध देखना नहीं चाहता। उसे मैं सुनकर अवश्य जानना चाहता हूं। वेदव्यास ने कहा–राजन! मैं संजय को दिव्यदृष्टि देता हूं। वह प्रकट–अप्रकट रात–दिन की सारी बातें एवं घटनाएं तथा किसी के मन की बात जान जायगा, और वह तुम्हें सब बताता रहेगा। संजय को न थकावट होगी और न इसे कोई शस्त्र से काट सकेगा।

इसके बाद वेदव्यास ने आगे महान नर–संहार के भवितव्य को सूचित करने वाले अमंगल–सूचक उत्पातों का वर्णन किया है–बाज, गीध, कौवे, कंक, और बगुले पेड़ के उच्च भाग पर बैठकर अपना समूह एकत्र करते हैं। ये मांस–भक्षी पक्षी युद्धस्थल से आनंदित हैं। कंक–पक्षी कठोर स्वर में बोलते हुए सेना के बीच से निकलते हुए दक्षिण दिशा को उड़ जाते हैं। सूर्य प्रातः और सायंकाल कबंधों से घिरा दिखता है। सूर्य, चंद्रमा और तारे जलते हुए दिखायी देते हैं। सूअर और बिल्ली उछल–उछलकर रात में लड़ते हैं। देवताओं की मूर्तियां कांपती, हंसती तथा मुंह से खून उगलती हैं। दुंदुभियां बिना बजाये बजती हैं और वीरों के रथ बिना जोते चल देते हैं। गर्भवती स्त्रियां पुत्र को न जन्म देकर भयंकर जीवों को पैदा करती हैं। तीन सींग, चार नेत्र, पांच पैर, दो मूत्रेंद्रिय, दो मस्तक, दो पूंछ और अनेक दाढ़ों वाले अमंगलमय पशु जन्म लेते हैं। वेदवादी ब्राह्मणों की स्त्रियां तुम्हारे नगर में गरुड और मोर पैदा करती हैं। यह अशुभ–सूचक उत्पात लगभग सौ श्लोकों में गिनाया गया है। बीच में वेदव्यास ने धृतराष्ट्र से कहा है कि तुम अपने बच्चों को समझाओ, जिससे वे पांडवों से समझौता करके शांति से रहें।

धृतराष्ट्र ने कहा–पिता जी! जैसा आप कहते हैं वैसा मैं भी चाहता हूं, किंतु क्या करूं, मेरे पुत्र मेरे वश में नहीं हैं (अध्याय –)।

मीमांसा

वेदव्यास यदि दूसरों को दृष्टि या दिव्यदृष्टि देने की शक्ति रखते तो जब उनका पुत्र धृतराष्ट्र अंधा ही जन्मा था तभी उसे आंखें दे देते। इतना ही नहीं, दुर्योधन को शुद्ध–बुद्धि दे देते। वे दुर्योधन को समझाकर सन्मार्ग में लाने में तो असमर्थ हैं, परंतु संजय को दिव्यदृष्टि देते हैं जिससे वे सब समय सारी गुप्त–प्रकट बातें जान जायंगे, यहां तक कि किसी के मानसिक संकल्प भी जान जायंगे। वस्तुतः यह सब काव्य का मनोरंजन है, अतिशयोक्ति और असंभव

कथन है। असंख्य ईश्वर मिलकर भी ऐसा नहीं कर सकते। युद्ध काल में संजय को सारी सूचनाएं दूतों से मिलती होंगी, और वे उसे धृतराष्ट्र को सुनाते होंगे। संजय को थकावट न लगे और उनको कोई शस्त्र काट न सके, यह भी असंभव है। यह सब लेखक का मनोविलास है।

अमंगल-सूचक उत्पात की लंबी लिस्ट है। युद्ध के दलबल देखकर पशु-पक्षी को कुछ आभास हो जाय, यह संभव हो सकता है, परंतु सूरज का कबंधों से घिरा दिखना, पत्थर की मूर्तियों का कांपना, हंसना, मुख से रक्त वमन करना, दुंदुभियों का स्वयं बज उठना, रथ का स्वयं चल देना, अस्वाभाविक अंगों के जानवर पैदा होना, मनुष्य-स्त्री से गरुड और मोर पैदा होना आदि असंभव है। ऐसी-ऐसी बातें लिखकर लेखकों ने समाज में भ्रम पैदा किया है और जनता में अज्ञान फैलाया है।

. संजय द्वारा भूमि, द्वीप आदि का वर्णन

धृतराष्ट्र ने संजय से कहा–सारे राजा पृथ्वी को हथियाने के लिए एक-दूसरे पर अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करते हैं। सब ऐश्वर्य चाहते हैं और दूसरे को सहन नहीं करते। ये एक-दूसरे को मारकर यमलोक की जनसंख्या बढ़ाते हैं, परंतु शांत नहीं होते। अतएव तुम भूमि का ही वर्णन करो।

संजय पहले प्राणियों तथा वनस्पतियों का वर्णन करते हैं। आगे वे कहते हैं कि सारा भौतिक संसार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी–पांच जड़ भूतों का पसारा है। जो इससे परे है वह अचिंत्य है। यहां चेतन तत्त्व के प्रति संकेत है। इसके बाद द्वीपों, वर्षों, पर्वतों, नदियों, नगरों आदि का वर्णन है। खारा पानी, दूध, दही, घी, रस आदि से भरे नाना समुद्रों का वर्णन है। ऐसे द्वीपों का वर्णन है जहां लोग दस हजार वर्ष, ग्यारह हजार वर्ष, बारह हजार वर्ष जीते हैं। शाक द्वीप में रहने वाले मरते ही नहीं हैं–*तत्र न म्रियते जनः'* (अध्याय -)।

मीमांसा

यह सब नौ अध्यायों तथा तीन सौ से अधिक श्लोकों में है। इसमें कुछ यथार्थ तथा शेष काल्पनिक, महिमापरक, अतिशयोक्तियों से भरा ऊटपटांग वर्णन है। उस समय लोगों का जो भौगोलिक ज्ञान था उसको अतिरंजित करके और उसमें महिमा मिलाकर वे कहते थे, इसलिए वह सब कथन आज व्यर्थ लगता है, किंतु अतिशयोक्तियों और असंभव-कथनों को हटाकर उसमें सार तत्त्व का निर्धारण किया जा सकता है। उपयोगी न होने से यहां उसके विस्तार को छोड़ दिया जाता है।

गीता : पहला अध्याय

. अर्जुन का तथ्यपरक कथन और विषाद

कौरव तथा पांडवों की सेना व्यूह-रचनापूर्वक युद्धस्थल कुरुक्षेत्र में आमने-सामने खड़ी है। दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से कहा–पांडवों के सेनापति धृष्टद्युम्न तथा भीम, अर्जुन, सात्यकि, विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान, काशिराज, पुरजित, कुंतिभोज, शैव्य, युधामन्यु, उत्तमौजा, अभिमन्यु, और द्रौपदी के पांचों पुत्र युद्ध के लिए तैयार खड़े हैं।

दुर्योधन ने आगे कहा–हमारी तरफ से आप स्वयं द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, भूरिश्रवा तथा मेरे लिए अपने जीवन का मोह त्यागकर बहुत-से राजे-महाराजे युद्ध के लिए तैयार खड़े हैं। मेरा निवेदन है कि आप लोग सब तरफ से सावधान रहकर हमारे प्रधान सेनापति भीष्म पितामह की सब तरह से रक्षा करें।

इसके बाद भीष्म ने गरजते हुए युद्ध को भड़काने वाला शंख बजाया। फिर तो दोनों तरफ से शंख, नगाड़े, ढोल, मृदंग, नरसिंहे आदि बाजे बजने लगे (अध्याय –)।

इसके बाद अर्जुन ने अपने कोचवान श्रीकृष्ण से कहा कि दोनों पक्षों के बीच में मेरा रथ खड़ा कीजिए जिससे मैं देखूं कि मुझे किन-किन से युद्ध करना है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कर दिया और अर्जुन से कहा कि युद्ध के लिए आये हुए इन कौरवों को देखो।

अर्जुन ने उन दोनों सेनाओं में अपने ताऊ, चाचों, दादों, परदादों, मामाओं, भाइयों, पुत्रों, पौत्रों, ससुरों, मित्रों और सुहृदों को देखा। वे इन्हें देखकर व्याकुल हो गये और बोले–श्रीकृष्ण! दोनों सेनाओं में डटे स्वजनों को देखकर मेरे अंग शिथिल हो रहे हैं, मुंह सूखा जा रहा है, मेरे शरीर में कंपन और रोमांच हो रहा है। मेरी त्वचा जल रही है, हाथ से धनुष गिर रहा है। मेरा मन भ्रमित है। मैं खड़ा होने में असमर्थ हूं।

अर्जुन ने आगे कहा–हे केशव! अपने परिवार को मारकर मैं कल्याण के दर्शन कैसे करूंगा ? अतएव मैं न विजय चाहता हूं, न राज्य-सुख चाहता हूं। हाय-हत्या करके राज्य और भोग किस काम के ? हम जिनके लिए राज्य, भोग और सुख चाहते हैं, वे ही मरने-मारने के लिए खड़े हैं। ये मुझे मारें तो भी मैं इन्हें नहीं मारना चाहता और मैं तीनों लोकों के राज्य के लिए भी इनको नहीं मारना चाहता, फिर इस राज्य के लिए मैं इनको कैसे मार सकता हूं ? धृतराष्ट्र

के पुत्रों को मारकर हमें कैसे प्रसन्नता होगी ? इन आततायियों को मारकर हमें पाप ही लगेगा। हम अपने ही कुटुंबियों को मारकर कैसे सुखी होंगे ?

इनका मन लोभ से ग्रस्त होने से ये बुद्धिभ्रष्ट हैं। ये पाप को नहीं देख पा रहे हैं; किंतु हम तो समझते हैं कि कुल-परिवार के नाश से जो दोष उत्पन्न होगा वह हमें खा जायगा, तो हम भी वैसे कुकर्म कैसे कर सकते हैं ? कुल-परिवार के नष्ट होने से कुल का सनातन धर्म नष्ट होता है और धर्म नष्ट होने से परिवार में पाप फैल जाता है, परिवार की स्त्रियां दूषित हो जाती हैं और स्त्रियों के दूषित होने से वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं। वर्णसंकर कुल को डुबाने वाला होता है। फिर पिंडोदक-क्रिया लुप्त हो जाती है; अतएव पितर अधोगति में जाते हैं। वर्णसंकर संतान से सनातन कुल-धर्म नष्ट होता है। फिर ऐसे लोगों का नरकवास ही है। खेद है कि हम बुद्धिमान होकर भी पाप करने के लिए तैयार हैं। हम राज्य और सुख के लिए परिवार का नाश करने के लिए तैयार हैं। हम शस्त्र त्यागकर शांत हो जायं और दुर्योधन आदि आकर हम शस्त्रहीनों को मार दें, तो भी हमारे लिए कल्याणकारक होगा।

अर्जुन उक्त बातें कहकर और धन्वा-बाण त्यागकर रथ के पिछले भाग में बैठ गये (अध्याय)।

मीमांसा

जब गीता लिखी गयी, उसके पहले से मृत पितरों के नाम से पिंड और जलदान दिये जाने का प्रचलन हो गया था। इसलिए लेखक ने अर्जुन के मुख से कहलाया है कि वर्णसंकर उत्पन्न होने से पिंडोदक-क्रिया समाप्त हो जाती है और पितर नरक में ही पड़े रहते हैं। यह पंडितों द्वारा प्रचार इसलिए कराया गया था कि लोग अपने मृत पिता के छोड़े हुए धन से किसी आधार से सही, कुछ दान-पुण्य करें। तत्त्वत: पिंडोदक-क्रिया करने अथवा न करने से मृत-पितरों का कोई हानि-लाभ होने वाला नहीं है।

अर्जुन तथ्य की बात कहते हैं कि मुझे राज्य नहीं चाहिए, सुख नहीं चाहिए, इन बंधुओं को मारकर मैं त्रिलोक का राज्य नहीं चहता हूं, फिर पृथ्वी का राज्य का क्या महत्त्व है ? ये हम भाइयों तथा द्रौपदी के साथ आततायीपन किये हैं, परंतु इन्हें मारकर तो पाप ही होगा। ये अंधे हैं, किंतु हम तो सत्य समझते हैं, फिर इन जैसे हम अत्याचारी कैसे बनें ? अतएव ये भले हमें मारें, हमें इन्हें नहीं मारना चाहिए। युद्ध में जब दोनों पक्षों के पुरुष मर जायंगे, तब परिवार की स्त्रियां इधर-उधर अन्य पुरुषों से लगेंगी और वर्णसंकर परिवार बनेगा जिससे

कुल–धर्म नष्ट होगा और कुल–परिवार का पूरा पतन हो जायगा।

अर्जुन की उपर्युक्त सारी बातें परम सत्य हुईं जिसे आप युद्ध के बाद होने वाले परिणाम को महाभारत पढ़–सुन कर जानते हैं, जान सकते हैं।

गीता : दूसरा अध्याय

. श्रीकृष्ण का उत्तर

श्रीकृष्ण ने कहा–इस विषम परिस्थिति में तुम्हें यह मोह कैसे उत्पन्न हो गया ? न यह श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण है और न स्वर्ग तथा कीर्ति को देने वाला है। तुम नपुंसक मत बनो। मुझे यह अच्छा नहीं लग रहा है। मन की तुच्छ दुर्बलता त्यागकर युद्ध के लिए खड़े हो जाओ।

अर्जुन ने कहा–श्रीकृष्ण! मैं गुरुवर द्रोणाचार्य तथा पितामह भीष्म से कैसे लड़ूंगा ? ये दोनों हमारे पूज्य हैं। भिक्षा मांगकर खाना अच्छा है, परंतु इन गुरुजनों को मारना अच्छा नहीं है। गुरुजनों को मारकर रक्त से सने हुए भोग ही तो भोगना होगा ? युद्ध करना सही है या गलत, समझ में नहीं आता है। यह भी पता नहीं है कि हम जीतेंगे या कौरव! हमारे सामने युद्ध में वे खड़े हैं जो हमारे भाई–बंधु हैं। उनको मारकर हम जीना नहीं चाहते।

श्रीकृष्ण हंसते हुए बोले–अर्जुन! तू उनके लिए शोक करता है जिनके लिए शोक नहीं करना चाहिए और पंडितों जैसी बातें करता है, परंतु पंडित लोग न तो मरे हुए के लिए शोक करते हैं और न जीवित लोगों के प्रति शोक करते हैं। अर्जुन! मैं, तुम और ये राजा लोग पहले थे, अभी हैं और आगे भी रहेंगे। जैसे जीव के इस देह में बालकपन, जवानी और बुढ़ापा आते हैं, वैसे ही इसे अन्य शरीरों की प्राप्ति होती है। इंद्रिय और विषयों के संयोग से सरदी–गरमी तथा सुख–दुख आते हैं और वे क्षणिक हैं। इनको निर्विकार भाव से सहन करना चाहिए। मोक्ष एवं परम शांति वही पाता है जो सुख–दुख को समान भाव से सह लेता है और व्याकुल नहीं होता है। ''असत की सत्ता नहीं होती और सत्य का कभी अभाव नहीं होता। तत्त्वदर्शी जन इन दोनों सच्चाइयों को जानते हैं।'' सभी में उपस्थित आत्मा अविनाशी है। इसका विनाश नहीं होता है। आत्मा अविनाशी, अप्रमेय तथा नित्य है। इसका कोई नाश नहीं कर सकता। इसलिए

. नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः गीता ,

तू युद्ध कर। आत्मा न मारता है और न मरता है। जो यह मानता है कि आत्मा मारता या मरता है, वह ठीक नहीं समझता है। आत्मा न कभी जन्मता है, न मरता है और न यह उत्पन्न होकर कुछ बनता है। यह तो अजन्मा, नित्य, शाश्वत और सनातन है। यह शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। जो आत्मा को अविनाशी, नित्य, अजन्मा और स्थिर समझता है वह कैसे किसी को मारता और मरवाता है। जैसे मनुष्य पुराने कपड़े त्यागकर नये कपड़े पहनता है, वैसे जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण कर लेता है। आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न हवा सुखा सकती है। यह अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। यह नित्य, सर्वगत, अचल, स्थिर और सनातन है। यह अव्यक्त, अचिंत्य और विकार-रहित है। अतएव तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। यदि यह माना जाय कि आत्मा की स्थिर सत्ता नहीं है, तो इससे भी तो मरने वाले के लिए शोक नहीं करना चाहिए, क्योंकि जो जन्मा है वह मरेगा ही। यदि यह माने कि जीव का जन्म-मरण चलता रहता है, कोई मुक्त नहीं होता है, तो भी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि जो जन्मा है वह मरेगा ही और जो मरेगा वह फिर जन्मेगा ही।

"हे अर्जुन! प्राणियों का जन्म के पहले का पता नहीं है कि वे कहां थे। केवल वर्तमान में उनका प्रत्यक्ष होता है और वे मर जाने पर पुनः लापता हो जायंगे, ऐसी स्थिति में क्या शोक-चिंता करना ?" आत्मा को कोई आश्चर्य-पूर्वक समझता है, कोई आश्चर्यपूर्वक कहता है और कोई आश्चर्यपूर्वक सुनता है। कोई तो सुनकर भी नहीं समझता है। देह में रहने वाला आत्मा अमर है। उसको कोई मार नहीं सकता। इसलिए संपूर्ण प्राणियों के लिए शोक करने की बात नहीं है। तुम अपने धर्म को देखो। क्षत्रिय के लिए युद्ध से बढ़कर कल्याण-प्राप्ति का रास्ता नहीं है, अतएव तुम भय मत करो। क्षत्रियों के लिए युद्ध स्वर्ग का खुला द्वार है। यदि तू युद्ध नहीं करेगा, तो स्वर्ग और कीर्ति दोनों खोयेगा। यदि तुम युद्ध से भागोगे तो लोग तुम्हारी निंदा करेंगे और सम्माननीय मनुष्य के लिए अपकीर्ति मृत्यु से अधिक दुखदायी है। तुम्हें लोग समझेंगे कि अर्जुन कायरतावश युद्ध से भाग खड़ा हुआ। तेरे वैरी तेरी निंदा करेंगे। याद रख, या तो तू मारा जाकर स्वर्ग प्राप्त करेगा या जीतकर पृथ्वी का राज्य पायेगा। सुख-दुख,

---

. अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना गीता ,

हानि–लाभ और जय–पराजय में समान बुद्धि रखकर युद्ध के लिए तैयार हो जाओ, इससे तुम्हें पाप नहीं लगेगा (अध्याय , –)।

मीमांसा

लेखक ने जो कुछ श्रीकृष्ण के मुख से ऊपर कहलवाया है वह सामयिक है। युद्ध के संगीन समय में अर्जुन का इस प्रकार सोचना सामयिक नहीं है। परंतु अर्जुन ने जो कुछ तर्क दिया है, यथार्थ है और युद्ध के बाद वही सब हुआ है। गुरुजन, प्रियजन मारे गये, स्त्रियां विधवा हुईं और दुख के अलावा कुछ नहीं रह गया। आत्मा की अमरता के सिद्धांत का फल हत्या करना नहीं है। कोई भी हत्यारा कह सकता है कि आत्मा तो मरता नहीं है, इसलिए किसी की हत्या करने से कोई पाप नहीं है। अर्जुन को बताया गया कि युद्ध में मरोगे तो स्वर्ग पाओगे और जीतोगे तो राज्य पाओगे; परंतु यह दोनों न होकर यदि अर्जुन शत्रुओं द्वारा पकड़कर जेल में डाल दिया जाता, तब उसकी क्या दशा होती ? क्षत्रिय के लिए युद्ध स्वर्ग का खुला द्वार है, ऐसा आश्वासन दिया जाता है। पंडित, पादरी, मुल्ला सब ऐसा कहते हैं, क्योंकि उनको युद्ध कराना रहता है। आज के आतंकवादी भी आत्मघाती ढंग से लोगों की हत्या करते हैं।

युद्ध सदैव दुखदायी है। अहंकार और लोभ से युद्ध होता है। जैसे जातिवाद तथा संप्रदायवाद विष है, वैसे राष्ट्रवाद भी विष है। जैसे एक देश के रहने वाले उसके प्रदेशों को लेकर नहीं लड़ते हैं, वैसे पूरे भूमंडल के लोग राष्ट्रवाद छोड़कर रहें, तो युद्ध बंद हो जाय और सामरिक साधन तथा सैन्य पर जो सब देशों का अतुल धन व्यय होता है वह रुककर मानवता के कल्याण में लग जाय, तो थोड़े दिनों में पूरा भूमंडल खुशहाल हो जाय।

कौरव–पांडव में तो राष्ट्र की भी समस्या नहीं थी। दोनों भाई–भाई थे। दोनों अपनी दुर्बुद्धि का प्रकाशन कर रहे थे। शकुनि ने दुर्योधन की तरफ से जुआ खेलने की धूर्तता की और युधिष्ठिर ने जुआ में दुर्योधन के सारे राज्य को जीत लेने की दुराशापूर्ण मूर्खता की। फिर दोनों राज्य के लोभी कटकर मरे और पीछे बचे हुए परिवार और राष्ट्र के लिए केवल दुख और पतन छोड़ गये।

गीतालेखक विद्वान थे, भारतीय दर्शन के ज्ञाता थे। तब तक श्रीकृष्ण की पूर्ण अवतार के रूप में प्रतिष्ठा हो गयी थी और गीताकार स्वयं उसके पक्षधर थे। साथ–साथ वे श्रीकृष्ण के वैदिक और औपनिषदिक स्वरूप को जानते थे। ऋग्वेद के तीसरे मंडल के छानबेवें सूक्त में श्रीकृष्ण के विषय में बताया गया है

कि वे दस हजार वन्य जातियों के नायक थे तथा कर्मकांड के प्रतीकात्मक नायक-इंद्र के विरोधी थे। मुंडक उपनिषद् के महर्षि अंगिरा, जिसने हवन तर्पण स्वरूप यज्ञ-याग की धज्जियां उड़ायी हैं और स्वाहा-स्वाहा करने वालों को *'अंधेनैव नियमाना यथांधा:'*-अंधा अंधों को रास्ता दिखाने वाला कहकर उनका मजाक उड़ाया है; और इसके बाद आत्मज्ञान तथा आत्मस्थिति का उपदेश दिया है। इसी अंगिरा ऋषि के शिष्य घोर थे, जिनको घोर आंगिरस कहा जाता है। वे अपने गुरु अंगिरा से खरा ज्ञान पाकर कृष्ण को यज्ञ-याग से हटकर जीवन-यज्ञ का उपदेश दिये थे। इसे छांदोग्य उपनिषद् (,) में पढ़ा जा सकता है। इन सबका यह परिणाम था कि श्रीकृष्ण अपने समय के महान क्रांतिकारी थे। वे वन्यजाति तथा सर्वहारा के तो पक्षधर थे ही, पशु-पक्षियों की हिंसा के भी विरुद्ध थे। परंतु पीछे श्रीकृष्ण को सर्वकर्ता ईश्वर बना दिया गया। गीता में ये सब बातें आयी हैं। गीताकार श्रीकृष्ण के क्रांतिकारी स्वरूप को उभाड़कर उनके मुख से कहलवाता है-

. अमृतमय उपदेश

हे अर्जुन! निश्चयात्मक बुद्धि एक ही होती है, परंतु चंचल मन वालों की बुद्धि बिखरी होती है। यज्ञ-याग से पुत्र, धन, स्वर्ग आदि मिलते हैं-इस प्रकार जो दिखाऊ शोभायुक्त पुष्पित वचन कहते हैं और वेदवाद में रत हैं, उन विवेकहीनों की बुद्धि स्थिर नहीं होती। वे तो झूठे स्वर्ग के लोभी और सकामी हैं। उनके कर्म बारंबार जन्म देने वाले हैं। वे भोग-ऐश्वर्य के लोभी बहुत-से कर्मकांड में उलझे रहते हैं। जो भोग-ऐश्वर्य का लोभी होता है उसकी चेतना नष्ट हो जाती है। उसकी बुद्धि न स्थिर होती है और न शांति पाती है। हे अर्जुन! वेद तो त्रिगुण कर्मकांड के उपदेशक हैं। तू इनसे अलग हो जा। तू द्वंद्व-रहित, नित्य सत्य में स्थित, लौकिक वस्तुओं के संग्रह और रक्षा की चिंता से रहित और आत्मा में प्रतिष्ठित हो जा-*निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ( )।* जिसको सर्वत्र स्वच्छ सुमिष्ट जल की प्राप्ति हो जाती है उसे मैले गड्ढे के जल से क्या प्रयोजन! इसी प्रकार जिसे निर्मल परमानंदमय आत्मस्थिति नित्य प्राप्त है, उसे वैदिक कर्मकांडों से क्या प्रयोजन! तुम्हें केवल कर्म करने का विचार रखना चाहिए, फल पाने की इच्छा नहीं रखना चाहिए। इसलिए न तुम कर्म करने में आसक्त होओ और न फल की इच्छा रखो। तुम आसक्ति त्यागकर समत्व योग में स्थित होकर कर्म करो। सिद्धि और असिद्धि में समता रखकर कर्म करो। समता ही योग कहलाता है-*समत्वं योग उच्यते* (,

)। समता में स्थित बुद्धि से कर्मकांड अत्यंत नीचा स्तर का है। अतएव समता की स्थिति में अपने कल्याण की इच्छा रखो। सांसारिक लाभ की इच्छा रखने वाले तो दरिद्र हैं। समता बुद्धि प्राप्त मनुष्य आज ही पाप-पुण्य से मुक्त हो जाते हैं। इसलिए तुम समत्व में स्थित होओ। समता रूपी योग ही कर्मों में कुशलता है– *योगः कर्मसु कौशलम्* (,)। समता में स्थित मनुष्य कर्मों से उत्पन्न फल को त्यागकर जन्मरूपी बंधनों से मुक्त होकर निर्मल परम पद को प्राप्त होते हैं। जिस समय तुम्हारी बुद्धि मोह के दलदल से सर्वथा पार हो जायगी, उस समय सुने हुए और सुनने में आने वाले लोक-परलोक के सभी भोगों से तुम्हें वैराग्य हो जायगा। श्रुतियों के विविध वचन सुनकर जो तुम्हारी बुद्धि भ्रमित है, वह जब समाधि में स्थित हो जायगी, तब तुम समता रूपी योग को प्राप्त हो जाओगे।

अर्जुन ने पूछा–हे केशव! स्थितवान तथा समाधि में लीन मनीषी के क्या लक्षण हैं ? वह कैसे बोलता, कैसे बैठता और कैसे चलता है ?

श्रीकृष्ण कहते हैं–हे अर्जुन! जब मनुष्य मन में रही हुई सारी कामनाओं का त्यागकर देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। जिसका मन दुख में उद्विग्न नहीं होता, सुख पाने की इच्छा नहीं करता और राग, भय तथा क्रोध से पार हो जाता है, वह मुनि स्थिर बुद्धि का कहा जाता है। जो सर्वत्र इच्छा रहित है और अनुकूल-प्रतिकूल के प्राप्त होने पर उनकी प्रशंसा-निंदा नहीं करता, उसकी बुद्धि स्थिर है। जैसे कछुआ अपने फैले हुए अंगों को समेट लेता है, वैसे जो मनुष्य सभी विषयों से अपनी इंद्रियों को समेट लेता है, उसकी बुद्धि स्थिर है। वह समता को प्राप्त है। विषयों को न ग्रहण करने से विषय तो छूट जाते हैं, परंतु उनकी आसक्ति नहीं मिटती, किंतु अपने परम स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार हो जाने पर विषयों की सूक्ष्म आसक्ति भी छूट जाती है– *परं दृष्ट्वा निवर्तते* (,)।

हे अर्जुन! जब तक पूर्ण आसक्ति का त्याग नहीं हो जाता, तब तक बुद्धिमान मनुष्य द्वारा यत्न करते हुए भी ये चंचल इंद्रियां उसके मन को बल पूर्वक विषयों के स्मरण में डुबा देती हैं। इसलिए उन सभी इंद्रियों को वश में करके आत्मलीन होकर स्थित होओ। जिसकी इंद्रियां वश में हैं, उसी की बुद्धि स्थिर होती है। विषयों का चिंतन करने से मनुष्य की उनमें आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से काम उत्पन्न होता है, काम में भंग पड़ने पर क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रमित हो जाती है। स्मृति भ्रमित होने से बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट होने से पूरा पतन हो जाता है।

परंतु जिसने राग-द्वेष का त्यागकर दिया है और जिसका अंत:करण स्ववश है, वह मन-इंद्रियों से शरीर-यात्रा में उचित व्यवहार करते हुए प्रसन्न रहता है। मन प्रसन्न होने से उसके सारे दुख समाप्त हो जाते हैं और उसकी बुद्धि पूर्णतया स्थिर हो जाती है। जिसने अपने मन-इंद्रियों को नहीं जीता है उसकी बुद्धि स्थिर नहीं होती और न उसकी कल्याण में लगन होती है, अतएव कल्याण में लगन न होने से उसे शांति नहीं मिलती। जो शांति-रहित है उसको सुख कैसे मिल सकता है ? जैसे जल में चलने वाली नाव को वायु डुबा देता है, वैसे विषयों में विचरते हुए मनुष्य को मन डुबा देता है। अतएव जिसने अपने मन-इंद्रियों को पूर्णतया अपने वश में कर लिया है, उसी की बुद्धि स्थिर होती है।

"संपूर्ण प्राणियों के लिए जो रात्रि के समान है उस स्वरूपस्थिति रूपी परम शांति में संयमी मनुष्य जागता है; और जिस सांसारिक राग-रंग में संसारी मनुष्य जागते हैं, मननशील विवेकी उसे रात्रि तुल्य समझते हैं।" जैसे सारी नदियां समुद्र को विचलित किये बिना उसमें समा जाती हैं, वैसे जिसमें सारी कामनाएं लीन हो जाती हैं, वह शांति पाता है; भोगों की कामना वाला शांति नहीं पाता। तात्पर्य है कि जिसके मन की सारी कामनाएं शून्य हो जाती हैं, वह शांति पाता है; कामना वाला शांति नहीं पाता। जो मनुष्य सारी कामनाओं को त्यागकर और इच्छा-रहित, ममता-रहित तथा अहंकार-शून्य होकर जीवन व्यतीत करता है, वह शांति पाता है। हे अर्जुन! यह उच्चतम स्थिति है। इसको पा जाने के बाद ज्ञानी कभी विमोहित नहीं होता। वह इस उच्चतम स्थिति में होकर शरीरांत-काल में महा निर्वाण को प्राप्त होता है (अध्याय , श्लोक -)।

मीमांसा

स्वरूपस्थितिजनित इतने अमृतमय वचन कहने-सुनने के बाद क्या युद्ध करने की आवश्यकता रह जाती है ? वस्तुत: गीताकार को महाभारत में गीता फिट करना था, इसलिए उसने गीता में युद्ध का पुट दिया; अन्यथा गीता के उपदेश का युद्ध से कुछ लेना-देना नहीं है। महाभारत-युद्ध के ढाई हजार वर्ष बाद गीता की रचना हुई है और उसमें ईसा के कई सौ वर्षों बाद तक नये श्लोक जुड़ते रहे हैं। अधिकारी विद्वानों की सम्मति से यही सिद्ध होता है कि महाभारत कथा लोकगीत में चलती रही। उसका महाकाव्य रूप में आना ईसा के चार सौ वर्ष पूर्व से शुरू हुआ और पांच-छह सौ वर्ष बाद तक इसकी रचना होती रही।

. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः गीता ,

गीता : तीसरा अध्याय

. कर्म करे औ रहे अकर्मी

अर्जुन ने कहा–यदि आप मानते हैं कि कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ है, तो आप मुझे युद्ध रूपी घोर कर्म में क्यों लगाते हैं ? आप मिली-जुली बातें कहकर मेरी बुद्धि को क्यों व्यामोहित कर रहे हैं ? उस एक निश्चित बात को कहिए जिससे मेरा कल्याण हो।

श्रीकृष्ण ने कहा–वस्तुतः संसार में दो प्रकार की निष्ठाएं हैं–सांख्ययोग और कर्मयोग। बिना कर्म के निष्कर्मता नहीं आती है। कर्मों को त्याग देने मात्र से कोई सांख्य (ज्ञान) में स्थित नहीं हो सकता। कोई मनुष्य बिना कर्म किये क्षण मात्र नहीं रह सकता। मनुष्य स्वभावतः कर्म करता है। जो बाहर से इंद्रियों को बटोर लेता है, निष्क्रिय होकर बैठ जाता है, किंतु भीतर विषयों का चिंतन करता रहता है, वह दोहरा व्यक्तित्व वाला मिथ्याचारी है। जो मनुष्य अपने मन और इंद्रियों को स्ववश कर कर्तव्य कर्म करता है, वही श्रेष्ठ है।

तुम आवश्यक कर्तव्य कर्म करो। कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना अच्छा है। बिना कर्म किये शरीर-निर्वाह भी नहीं हो सकता। अनासक्तिपूर्वक कर्म करना यज्ञ है। यदि मनुष्य आसक्त होकर कर्म करता है तो वह बंधन में पड़ता है। अतएव अनासक्तिपूर्वक कर्म करना चाहिए। जड़-प्रकृति और प्राणि-समुदाय से हमें बहुत कुछ मिलता है, अतएव वे मानो यज्ञ कर रहे हैं; इसलिए हमें उनकी सेवा करना चाहिए। प्रकृति को दूषित न करे और प्राणियों को कष्ट न देकर यथाशक्ति उनकी सेवा करे। "परंतु जो मनुष्य आत्मा में रमता है, आत्मा में तृप्त है और आत्मा में ही संतुष्ट है, उसको कुछ करना शेष नहीं है।" ऐसे उच्चतम स्थिति प्राप्त मनुष्य के लिए कोई कर्म शेष नहीं रहता। और उसे कर्म न करने का भी हठ नहीं रहता। उसे किसी से कोई स्वार्थ नहीं रहता। अतएव तुम आसक्ति रहित होकर कर्म करो। जो अनासक्त होकर कर्म करता है वह परमशांति प्राप्त करता है। जनक आदि कर्म करते हुए शांति प्राप्त किये; अतएव तुम्हें भी कर्म करना चाहिए।

श्रेष्ठ लोग जैसे आचरण करते हैं, अन्य लोग वैसे ही आचरण करने लगते हैं। वे जो प्रमाण कर देते हैं, संसार के लोग उसी का अनुसरण करते हैं। मुझे न

. **यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।**
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते गीता ,

कुछ पाना है और न कुछ करना है, तो भी मैं कर्म करता हूं। बड़े लोग यदि अपना उच्चतम आदर्श न स्थापित करें, तो पीछे वाले भ्रष्ट ही हो जायंगे। अतएव अनासक्त होकर कर्म करना चाहिए। आत्माराम में रमने वाले ज्ञानी को चाहिए कि वह सामान्य लोगों को ऐसा निर्देश न दे कि वे कर्तव्य कर्म छोड़ बैठें, किंतु स्वयं कर्तव्य कर्म करते हुए उन्हें भी कर्म में लगावें।

वस्तुतः सारे कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा होते हैं, परंतु अहंकार से विमूढ़ बना मनुष्य मानता है कि मैं करता हूं। जो तत्त्वज्ञाता है वह समझता है कि मन, बुद्धि, अहंकार से लेकर संपूर्ण शरीर त्रिगुणात्मक प्रकृति की सृष्टि है; अतएव इस शरीर से जो कुछ कर्म होता है वह प्रकृति के द्वारा हो रहा है; गुण गुणों में बरत रहे हैं, ऐसा समझकर वह कहीं आसक्त नहीं होता–*गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते* (,)। विमोहित मनुष्य इस तत्त्व को नहीं समझता है, इसलिए वह अहंकारपूर्वक कर्म करता है। ज्ञानी को चाहिए कि वह उसे फटकार बताकर विचलित न करे। अहंकारपूर्वक ही सही, अच्छा कर्म करता है, तो उसे करने दे। कभी समझ जायगा तो अहंकार छोड़कर करेगा।

प्रत्येक इंद्रिय के विषय में राग-द्वेष छिपे हैं। साधक इनके वश में न हो; ये कल्याण के शत्रु हैं। अर्जुन ने कहा–हे कृष्ण! यह मनुष्य न चाहते हुए भी बरबस पाप-कर्म में कैसे लग जाता है? श्रीकृष्ण ने कहा–रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है। यह बहुत तृष्णा वाला पेटू और महा पापी है। इसे तुम अपना वैरी समझो। जैसे धुएं से आग, मैल से दर्पण और झिल्ली से गर्भ ढके रहते हैं, वैसे काम से ज्ञान ढका रहता है। काम प्रबल अग्नि है। यह कभी पूर्ण नहीं होता। इसी से स्वरूपज्ञान ढका रहता है। इंद्रिय, मन और बुद्धि काम के निवास-स्थान हैं। काम इंद्रिय, मन और बुद्धि के द्वारा ही मनुष्य को मोहित करता है। इसलिए हे अर्जुन! इंद्रिय-मन को अपने वश में करके पापी काम-शत्रु को मारो। यह काम ज्ञान-विज्ञान का नाश करने वाला है।

"शरीर से श्रेष्ठ इंद्रियां हैं, इंद्रियों से श्रेष्ठ मन है, मन से श्रेष्ठ बुद्धि है और जो बुद्धि से श्रेष्ठ है, वह आत्मा है। इसलिए बुद्धि से श्रेष्ठ आत्मा को जानकर आत्मा द्वारा आत्मा को वश में करके दुर्जय काम-शत्रु को मार डालो।"

. **इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।**
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः
एवं बुद्धे परं बुध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् गीता , –

मीमांसा

गीता जब लिखी जा रही थी, उसके पहले से कर्म करने के प्रति उदासीनता का बरताव चल रहा था। यज्ञ में पशु भी मारकर हवन किया जाता था। ज्ञानियों ने इसको बुरा समझा। उन्होंने ऐसे हवन–तर्पण रूपी कर्म का विरोध किया। यहां तक तो ठीक था, परंतु उन्होंने अग्नि छूना भी पाप मान लिया, इसलिए अपने हाथ से भोजन पकाना भी पाप मान लिया। इस प्रकार हाथ–पैर बटोरकर बैठ जाना संन्यास मान लिया गया। इसकी विवेकियों ने अलोचना की। वही झलक गीता में सर्वत्र दिखायी देती है। कर्म करना एक सच्चाई है। बिना कर्म किये जीवन भी नहीं चल सकता। कर्म अनासक्तिपूर्वक करना चाहिए।

सांख्ययोग और कर्मयोग दो निष्ठाएं हैं। सांख्ययोग है कर्मों से ऊपर उठकर आत्मलीनता की दशा, और कर्मयोग है अनासक्तिपूर्वक कर्म करना। सांख्ययोगी आत्मलीन पुरुष समाधि की निष्क्रिय अवस्था में रहता है; परंतु उसका भी व्यवहार काल ही अधिक होता है। जब वह व्यवहार में रहता है तब वह भी कर्म करता है, किंतु उसके कर्म में आसक्ति नहीं होती। विवेकवान समझता है कि जो कर्म मेरे द्वारा होता है वह वस्तुतः प्रकृति द्वारा ही होता है; क्योंकि मन–इंद्रियों द्वारा कर्म होते हैं और मन–इंद्रियां प्रकृति के ही कार्य हैं। इसलिए विवेकवान कर्म करते हुए उसके अहंकार से रहित रहता है, इसलिए वह बंधन में नहीं पड़ता।

कामनाएं ही ज्ञान को ढांकती हैं। कामनाओं में विघ्न पड़ने पर क्रोध उत्पन्न होता है और बुद्धि भ्रष्ट होती है; परंतु जब साधक यह समझ लेता है कि आत्मा सर्वोच्च है और मैं आत्मा हूं, तब वह काम–शत्रु को मारकर अविचल स्वरूप–स्थिति के साम्राज्य में निवास करता है।

गीता : चौथा अध्याय

. अवतारवाद; कर्म, अकर्म और विकर्म

श्रीकृष्ण ने कहा–मैंने इस शाश्वत योग को पहले सूर्य से कहा था, सूर्य ने मनु से कहा था और मनु ने इक्ष्वाकु से कहा था। इस प्रकार राजर्षियों ने परंपरा से जाना। परंतु यह योग बहुत काल से पृथ्वी पर लुप्त था। हे अर्जुन! तुम मेरे भक्त और मित्र हो, इसलिए उस पुरातन योग के रहस्य को मैंने आज तुमसे कहा।

अर्जुन ने कहा–आप तो अभी वर्तमान में जन्में हैं, फिर आपने इन पुरातन राजर्षियों को कैसे बताया ? श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया–हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुत जन्म हो चुके हैं, उन्हें तुम नहीं जानते, किंतु मैं जानता हूं। मैं अजन्मा, अविनाशी और सभी प्राणियों का ईश्वर होते हुए अपनी प्रकृति को अपने वश में करके अपनी योग-माया से जन्म लेता हूं। हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अवतार लेता हूं। साधुओं की रक्षा के लिए, पापियों के नाश के लिए और धर्म की स्थापना के लिए मैं युग-युग में अवतार लेता हूं। मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं, ऐसा जो मुझे जानता है, वह शरीर त्यागने के बाद जन्म न लेकर मुझे ही प्राप्त होता है। जिनके राग, भय, क्रोध आदि नष्ट हो गये थे, मेरे में निमग्न और मेरे आश्रित थे ऐसे बहुत-से भक्त ज्ञान-तप से पवित्र होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हो गये थे। हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूं। वस्तुतः सभी मनुष्य सब प्रकार मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।

इस लोक में कर्म-फल चाहने वाले देवताओं की पूजा करते हैं और उनके कर्म शीघ्र फल देते हैं। गुण-कर्म-विभागपूर्वक चारों वर्णों का मैंने ही सृजन किया है, मैं उसका कर्ता होते हुए भी मुझे अविनाशी अकर्ता ही समझो। न मुझे कर्म-फल की इच्छा है और न मैं उसमें लिपायमान होता हूं। जो व्यक्ति मुझे इस प्रकार जान लेता है वह कर्मों में लिपायमान नहीं होता है। पहले के मुमुक्षुओं ने भी इसी प्रकार जानकर कर्म किये हैं, इसलिए तुम भी पूर्वजों द्वारा निर्धारित ही कर्म करो। कर्म क्या है और अकर्म क्या है, इसको निर्धारित करने में बुद्धिमान भी भ्रम में पड़ जाते हैं। इसलिए इसे मैं समझाकर कहूंगा, जिसे जानकर तुम कर्मबंधन से मुक्त हो जाओगे। कर्म, अकर्म और विकर्म के स्वरूप को जानना चाहिए। वस्तुतः कर्म की गति गहन है–*गहना कर्मणो गतिः* (,)। जो कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान और योगी है। वह मानो सब कर्म कर लिया (अध्याय , -)।

मीमांसा

श्रीकृष्ण के अवतार की मान्यता भक्तों में पक गयी थी। गीता-लेखक स्वयं श्रीकृष्ण के अवतार को मानता था। भक्त अपने मान्यवर को पहले भगवान बनाता है, उसके बाद अनेक महिमा की बातें अतिशयोक्तिपूर्वक उसके मुख में डालकर निकालता है। यह एक महापुरुष के संबंध की बात नहीं है, अपितु सबके संबंध की बात है। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम कहते हैं–*आत्मानं*

मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् (लंकाकांड, ,)। मैं अपने को मनुष्य मानता हूं। मेरा नाम राम है। मैं दशरथ का पुत्र हूं। परंतु जब राम के अवतार की मान्यता पक गयी, तब गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में श्रीराम के मुख से कहलवाया–"सब मम प्रिय, सब मय उपजाये।" अर्थात सब प्राणी मुझे प्रिय हैं और सबको मैंने पैदा किया है।

कबीर साहेब अवतारवाद, पैगंबरवाद के विरोधी हैं; क्योंकि ये घोर काल्पनिक हैं और धर्म के क्षेत्र में अपना चौधराना गांठने के लिए हैं। इससे असत्य धारणा का प्रचार होकर मानव भ्रांत होता है और धर्म के नाम पर कट्टरता और हिंसा शुरू होती है। अपने माने गये अवतार और पैगंबर के प्रति श्रद्धातिरेक, उसी के इर्दगिर्द स्वर्ग और मोक्ष का रिजर्वेशन और दूसरे संप्रदाय वालों को नास्तिक, काफिर, नापाक आदि मानना और कहना शुरू होता है। अवतारवाद, पैगंबरवाद, किसी पुस्तक को ईश्वरीय मानने की बात और किसी संप्रदाय को ईश्वरीय मानने की बात धर्म के क्षेत्र में असत्य, भ्रम और हिंसा पैदा करती है। श्रद्धाहीन मनुष्य कहीं का नहीं होता है, किंतु अति श्रद्धा हिंसा पैदा करती है। महापुरुषों, पुस्तकों तथा संप्रदायों के दैवीकरण ने असत्य और घृणा का विस्तार किया है।

भारतीय परंपरा के मूल में अवतारवाद-पैगंबरवाद नहीं है। भारत ही नहीं, विश्व के प्राचीनतम धर्मग्रंथ वेद हैं; और उनमें अवतारवाद-पैगंबरवाद की गंध भी नहीं है; और यह भी उनमें कहीं नहीं लिखा है कि वेद अलौकिक हैं, किसी ईश्वर ने भेजा या लिखा है। वेद के ऋषि पूज्य हैं, किंतु वे हमारी उपासना के केंद्र में नहीं हैं। हमारी उपासना के केंद्र में आत्मा है। यह राज मार्ग है। उपनिषदों का यही निर्णय है। किंतु जब बौद्धों और जैनों ने तथागत बुद्ध और महावीर स्वामी को उत्तारवाद में चित्रित किया, तब उसकी प्रतिक्रिया में ब्राह्मणों ने अवतारवाद की कल्पना की। उत्तारवाद तो ठीक है। बुद्ध तथा महावीर साधारण जीव थे, किंतु वे अपने कषाय को काटकर ऊपर उठ गये, निर्मल हो गये, आनंदकंद हो गये जो जीवन का लक्ष्य है। यही उत्तारवाद है। उत्तार का अर्थ है ऊपर उठना–निर्मल मन का हो जाना। परंतु अवतारवाद घोर काल्पनिक है कि सर्वसमर्थ ईश्वर ने अपने गुणों को घटाकर देह धारण कर लिया। पैगंबरवाद की कल्पना है कि ईश्वर अपना धर्मदूत पृथ्वी पर भेजता है। एक पैगंबरवादी दूसरे पैगंबरवादी को काफिर कहते हैं और उन्हें सदैव के लिए नरक में जाने का शाप देते हैं।

इसाइयों और मुसलमानों की देखा-देखी श्रीराम और श्रीकृष्ण को अवतार मानने वाले उन सबको वेद-विरोधी, बिना सींग-पूछ के बैल, सुअर, कुत्ता,

गधा, नरकगामी आदि कहने लगे जो राम-कृष्ण को अवतार नहीं मानते। किसी महापुरुष में अलौकिकता का आरोप किया जायगा तो वहीं जड़ता, अज्ञान, क्रूरता पैदा होगी।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की भाषा में कहा जाय, तो अवतारवाद, पैगंबरवाद, पुस्तकवाद, संप्रदायवाद घर जोड़ने की माया है। कोई महापुरुष अलौकिक है, कोई पुस्तक अलौकिक है और कोई संप्रदाय अलौकिक है, यह असत्य है, घर जोड़ने की माया है। महापुरुष, पुस्तक तथा संप्रदाय के दैवीकरण ने असत्य, भ्रम, द्वेष और हिंसा फैलाया है। जब तक इनका मानवीकरण नहीं होगा जो कि सच्चाई है, तब तक सत्य, समता और शांति की प्रतिष्ठा नहीं होगी।

प्रस्तुत प्रसंग के आरंभ में लेखक श्रीकृष्ण से कहलवाता है कि मैंने इस योग को पहले सूर्य से कहा था। सूर्य आग का गोला है, अचेतन है। श्रीकृष्ण मानवतावादी थे, वर्णव्यवस्था के सृजेता नहीं थे। गीताकार उन्हें वर्णव्यवस्था की स्थापना करने वाला बताता है।

कर्म करना परंतु उसमें आसक्त न होना कल्याण का सच्चा रास्ता है। अपने पर संयम और दूसरे के साथ शील का बरताव कर्म है, और स्वयं लंपट रहना तथा दूसरों के साथ कटु बरताव करना अकर्म है, न करने योग्य है। चोरी, हत्या, व्यभिचारादि विकर्म है।

करना कर्म है और न करना अकर्म है। जो कर्म में अकर्म देखता है और अकर्म में कर्म देखता है, वह मनुष्य बुद्धिमान है। उसने मानो सब कुछ कर लिया। अर्थात कर्तव्य कर्म करते हुए जो अनासक्त रहता है, उसके कर्म में अकर्म है। अनासक्त व्यक्ति कर्म करते हुए भी उसके बंधनों से मुक्त है; और जो हाथ-पैर बटोरकर तो बैठा है, परंतु मन में विषयासक्ति है, वह अकर्म दिखते हुए भी कर्म-बंधन में पड़ा है। इसलिए जो अनासक्तियुत कर्म में अकर्म-मोक्ष देखता है और आसक्तिपूर्वक निष्क्रियता में कर्म-बंधन देखता है, वह बुद्धिमान है। उसने मानो सब कर्म कर लिया, जीवन में कृतार्थ हो गया।

. स्वरूपज्ञानपूर्वक अनासक्ति की रहनी यज्ञ है

जिसके संपूर्ण कर्म रागात्मक-संकल्प और कामना से रहित हैं और ज्ञानाग्नि में भस्म हो गये हैं, उसे ज्ञानीजन पंडित कहते हैं। जो कर्मों के फल की आसक्ति त्याग देता है और विषय-भोगों का सहारा छोड़कर अपने आपमें निरंतर तृप्त है वह कर्तव्य कर्म करता हुआ भी, मानो कुछ नहीं करता है—यही

कर्म में अकर्म की स्थिति है। जो इंद्रिय-मन पर विजयी है, सारी सांसारिक भोग-प्रतिष्ठा की पकड़ से रहित है और आशा से रहित है, वह केवल शरीर रक्षा के लिए कर्म करता है और पाप से मुक्त रहता है। जो सहज प्राप्ति में संतुष्ट है, हानि-लाभ तथा मानापमान द्वंद्वों से मुक्त है, ईर्ष्या से रहित और सांसारिक सफलता और असफलता में समता में रहता है, वह कर्तव्य कर्म करते हुए बंधनों में नहीं बंधता। जो अनासक्त, वासनाओं से मुक्त, स्वरूपज्ञान में स्थित, सावधान है और जीवन के सभी कर्म यज्ञ समझकर करता है, उसके सारे कर्म-बंधन नष्ट हो जाते हैं।

ज्ञानी के यज्ञ में ब्रह्म ही स्रुवा (करछुली) है, ब्रह्म ही हवन सामग्री है, ब्रह्म ही अग्निकुंड है, ब्रह्म ही हवन-कर्ता है और ब्रह्म में स्थिति ही ब्रह्मकर्म है और ब्रह्म ही फल है। तात्पर्य है कि ज्ञानी का यज्ञ है आत्मा ही में अभिन्न भाव से निरंतर स्थिति। कुछ लोग अपने से अलग देवता मानकर उसका पूजन रूप यज्ञ करते हैं, परंतु दूसरे ज्ञानीजन ब्रह्मज्ञान रूप ही यज्ञ करते हैं। अर्थात अपने ब्रह्म स्वरूप-उच्चतम स्वस्वरूप में ही स्थिति रूप यज्ञ करते हैं। कितने ज्ञानी अपनी ज्ञान-इंद्रियों का संयम रूपी यज्ञाग्नि में हवन करते हैं। कितने ज्ञानी शब्दादि पांचों विषयों का श्रोत्रादि पांचों ज्ञानेंद्रिय रूपी अग्नि में हवन करते हैं। अर्थात वे जो कुछ देखते, सुनते, छूते, सूंघते, चखते हैं, उनमें उनका मोह नहीं रहता है, जीवन-यात्रा में उनको कहीं राग-द्वेष तथा हर्ष-शोक नहीं रहता।

कितने ज्ञानी इंद्रियों और प्राणों की क्रियाओं का आत्मसंयम रूपी अग्नि में हवन करते हैं। अर्थात उनके जीवन की हर क्रिया ज्ञानमय रहती है। कितने द्रव्य-यज्ञ करते हैं, धन-दौलत परोपकार में लगाते हैं। अथवा अन्न, फल, घृतादि अग्नि में होमते हैं। कितने ज्ञानी शास्त्रों का स्वाध्याय रूपी यज्ञ करते हैं। कितने साधक तीक्ष्ण व्रत का पालन रूपी यज्ञ करते हैं। कितने साधक प्राण-अपान को समझकर प्राणायाम रूपी यज्ञ करते हैं। कितने ज्ञानी नियमित-संयमित आहार करते हुए आत्मसंयम रूपी यज्ञ करते हैं। ये सभी साधक अपने-अपने ढंग से यज्ञ करते हुए मन के मैल को धोते हैं। ये सब यज्ञों के ज्ञाता हैं।

यज्ञशिष्ट अमृत भोजन, यज्ञ से बचा हुआ अमृत भोजन है मन की प्रसन्नता। ऊपर के सारे यज्ञों का सार है संयम और शील। जो इनका अनुभव करता है वह सनातन ब्रह्म-शाश्वत आत्मा में स्थिति का अनुभव करता है। जो इस यज्ञ का अनुष्ठान नहीं करता, वह न आज सुखी रहता है और न आगे सुखी रहेगा। वेदों में अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन है। उन्हें समझो और कर्म-

बंधनों से मुक्त होने की साधना करो। हे अर्जुन! हवन-तर्पण की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है; क्योंकि सारे कर्म-बंधन आत्मज्ञान में ही समाप्त होते हैं। इसलिए हे अर्जुन! आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए तुम्हें आत्मज्ञानी महापुरुष के पास जाना चाहिए, विनम्रतापूर्वक उनकी शरण में रहकर उनकी सेवा करना चाहिए और फिर उनसे आत्मज्ञान के विषय में पूछना चाहिए। फिर वे महापुरुष तुम्हें आत्मज्ञान का उपदेश करेंगे। आत्मज्ञान हो जाने पर मनुष्य मोह से मुक्त हो जाता है। वह अपने समान सबको समझकर सबसे समतापूर्वक बरताव करता है। मनुष्य चाहे जितना पापी हो, आत्मज्ञान को पाकर और आत्मलीन होकर वह सारे पापों से पूर्णतया तर जाता है।

जैसे प्रज्वलित अग्नि इंधन को पूर्ण भस्म कर देती है, वैसे आत्मज्ञान की अग्नि में सारे कर्म भस्म हो जाते हैं। इस संसार में आत्मज्ञान के समान कुछ पवित्र नहीं है। उसे साधक संयम रूपी योग द्वारा धीरे-धीरे अपने आत्मा में पा लेता है। आत्मज्ञान हो जाने पर अनात्म का मोह मिट जाता है और साधक अपने आप में परम शांति का अनुभव करता है। जितेंद्रिय, सावधान तथा श्रद्धावान मनुष्य आत्मज्ञान प्राप्त कर साधना द्वारा तत्काल परम शांति प्राप्त करता है। श्रद्धाहीन, विवेक-रहित तथा संशययुक्त व्यक्ति पतित होता है। संशयग्रस्त मनुष्य को न इस समय सुख मिल सकता है और न इस जीवन के आगे सुख मिल सकता है। जिस साधक ने योग द्वारा समस्त कर्मों के बंधनों को काट दिया है, स्वरूपज्ञान द्वारा सारे संदेहों को नष्ट कर दिया है और निरंतर आत्मलीन है, उसको कर्म बंधन नहीं बनते। इसलिए हे अर्जुन! हृदय में रहे हुए अज्ञानजनित संशय को आत्मज्ञान की तलवार से काटकर समत्व रूपी योग में स्थित होकर दृढ़ हो जाओ (अध्याय , श्लोक -)।

मीमांसा

गीताकार बहुज्ञ है और वह सबका समन्वय करते हुए आत्मज्ञान की तरफ निर्देश करता है। साथ-साथ कर्तव्य कर्म न त्यागकर वैराग्य द्वारा सारे कर्म-बंधनों से ऊपर उठने की प्रेरणा देता है। जिसके फल में जीवन में समता की रहनी आती है; तब साधक सारे उद्वेगों से रहित रहकर हानि-लाभ, मान-अपमान, स्तुति-निंदा में समता की रहनी बरतता है और इसके फल में वह गहरी शांति में जीता है और शांति में ही शरीर त्यागकर सदैव के लिए शांत हो जाता है। स्वरूपज्ञानपूर्वक रहते हुए और अपने कर्तव्य कर्म करते हुए अनासक्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करना यज्ञ है। हमारा जीवन यज्ञ होना चाहिए।

गीता : पांचवां अध्याय

. सांख्ययोग और कर्मयोग का समन्वय

अर्जुन ने कहा–हे कृष्ण! आप कर्मों के संन्यास की प्रशंसा करते हैं, और पुनः कर्मयोग की भी प्रशंसा करते हैं। इनमें जो अधिक हितकर हो वह बात कहिए। श्रीकृष्ण ने कहा–कर्मसंन्यास और कर्मयोग दोनों कल्याणकारी हैं; किंतु कर्मसंन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है। कर्मों का सर्वथा त्यागकर देना कर्म-संन्यास है और आवश्यक कर्तव्य कर्म करते हुए उनसे अनासक्त रहना कर्मयोग है। आलसी भी कर्म छोड़ देता है। कर्म छोड़ देने से कोई वासनाओं से मुक्त नहीं हो जाता। जीवन में कर्म की आवश्यकता भी है। अतएव कर्म करते हुए उनसे अनासक्त रहना यह कर्मयोग ही उत्तम है।

जो न किसी का द्वेष करता है, न किसी चीज की इच्छा करता है और राग-द्वेष के उद्वेग से रहित शांत है, वह संन्यासी ही समझने योग्य है। वह सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए बंधनों से मुक्त हो जाता है। सांख्य और योग को अर्थात कर्मसंन्यास और कर्मयोग को भिन्न फल देने वाले वे कहते हैं जो समझदार नहीं हैं। जो एक साधना में पूर्ण स्थित हो जाता है वह दोनों के फल को पा जाता है। अर्थात जो सब तरफ से निष्काम है और कर्मों का त्यागी भी; और जो कर्तव्य कर्म करता है, परंतु सबसे निष्काम है, दोनों ही कल्याण को प्राप्त हैं। इसलिए जो ज्ञानयोग और कर्मयोग को एक फल–परम शांति देने वाला समझता है, वही सच्चा ज्ञानी है। ध्यान रहे, कर्मयोग के बिना कोई कर्मसंन्यास की स्थिति में नहीं पहुंच सकता। बिना सेवा के शांति नहीं मिलेगी। सेवा परायण साधक शीघ्र शांति प्राप्त करता है। जिसने मन और इंद्रियों को जीत लिया है और जिसका अंतःकरण पूर्ण शुद्ध है, वह कर्मयोगी सेवा-कर्म करता हुआ भी कर्मों में लिपायमान नहीं होता।

आत्मा-अनात्मा के भेद को पूर्णतया समझकर जो अपने आप में पूर्ण स्थित है, वह देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूंघता हुआ, खाता हुआ, चलता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ, आंखें खोलता हुआ, मूंदता हुआ, यह समझता है कि इंद्रियां अपने-अपने काम करती हैं; मैं कुछ नहीं करता हूं। जो साधक सभी कर्तव्य-कर्म आत्म-नियंत्रणपूर्वक करता है, वह सभी आसक्तियों से रहित होकर कर्म करते हुए उसी प्रकार उनसे सर्वथा निर्लिप्त रहता है जिस प्रकार कमल-पत्र जल में रहकर भी उससे निर्लिप्त रहता है। योगी मन, इंद्रिय, बुद्धि और शरीर द्वारा कर्म करता

है, परंतु वह अनासक्त होकर केवल चित्त-शुद्धि के लिए करता है। अनासक्त साधक कर्म-फल की इच्छा त्यागकर स्थिर शांति प्राप्त करता है। विषयासक्त मनुष्य कामनाओं में बंधा हुआ भटकता है।

आत्मसंयमी ज्ञानी मन से सारे कर्मों को त्यागकर इस नौ द्वार वाले शरीर रूपी पुर में सुखपूर्वक रहता है। वह मानो न कुछ करता है और न करवाता है। "ईश्वर न किसी को कुछ करने की प्रेरणा देता है, न किसी के लिए कर्म करता है और न किसी के कर्मों का फल ही देता है; अपितु जो जीव जैसा करता है उसको उसके कर्म के अनुसार स्वाभाविक फल मिलता है।" ईश्वर किसी के पाप अथवा पुण्य को नहीं ग्रहण करता है। वस्तुतः हर मनुष्य का ज्ञान अपने अज्ञान से ढका है। उसी से मनुष्य विषयों में मोहित है। परंतु जो अपने आत्मज्ञान से अज्ञान को नष्ट कर देता है, वह अपने आप में उसी प्रकार आलोकित हो जाता है जिस प्रकार सूर्य उदय होने पर प्रकाश हो जाता है। जिसकी बुद्धि आत्मनिष्ठा में पूर्णतया तत्पर है वह मन के सारे मैल को भस्म कर आत्मशांति में रहता है और अंत में जन्म-मरण से पार हो जाता है। ऐसे ज्ञानी जन ही पंडित हैं। वे विद्या और विनय संपन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और श्वपच को एक आत्मदृष्टि से–समता दृष्टि से देखते हैं। जिसका मन समता में रहता है, उसने आज ही सारे संसार को जीत लिया है; क्योंकि ब्रह्म (आत्मा) मूलतः निर्दोष और सम है। इसलिए समता की रहनी में रहने वाला ब्रह्म में, आत्मा में ही स्थित रहता है। जो संशय-रहित स्थिर बुद्धि ब्रह्मज्ञानी है वह सदैव ब्रह्म में-स्वस्वरूप में ही स्थित रहता है। वह प्रिय पाकर हर्षित नहीं होता और अप्रिय पाकर उद्वेगित नहीं होता। जो बाहरी विषयों से पूर्ण विरक्त हो जाता है, वह आत्म-सुख पाता है। आत्मलीन मनुष्य अक्षय शांति-सुख का अनुभव करता है। हे अर्जुन! विषय-भोग दुखों की खान और क्षणभंगुर हैं। इसलिए विवेकवान उनमें नहीं रमते। जो मनुष्य अपने जीवन-काल में काम-क्रोध के वेगों को सहन करने में बलवान है, वही योगी है और वही सुखी है। जो मनुष्य अंतरात्मा में सुखी है, अंतरात्मा में रमण करने वाला है तथा अंतरात्मा में ज्योतित है, वह ब्रह्मलीन-स्वरूपस्थ योगी ब्रह्म-निर्वाण एवं परम शांति प्राप्त करता है। वे ऋषि ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त करते हैं जिनके मन का संपूर्ण मल नष्ट हो गया है, संशय समाप्त हो गया है और जो आत्मविजयी तथा सभी

. **न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।**
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते गीता ,

प्राणियों के कल्याण में प्रेम रखते हैं। जो काम-क्रोध से रहित है, मन पर विजयी है तथा आत्म–साक्षात्कार संपन्न है, उस मनोजयी के लिए सब तरफ से महा निर्वाण का सुख है। जिस ज्ञानी ने बाहर के विषयों को सर्वथा त्याग दिया है और मन, बुद्धि, इंद्रियों को पूर्णतया जीत लिया है और जो इच्छा, भय और क्रोध से सर्वथा रहित है, वह सदैव मुक्त ही है।

(लेखक इस अध्याय के अंत में श्रीकृष्ण महाराज के लिए अपनी भक्ति-भावना को उन्हीं के मुख में उड़ेलकर उनसे कहलाता है)–मेरा भक्त मुझे ही सभी यज्ञ और तप का भोगने वाला, सभी लोकों का महान ईश्वर और सभी प्राणियों का परम मित्र जानकर शांति पाता है (अध्याय)।

मीमांसा

लेखक कृष्णभक्त है, परंतु उदार है। वह अन्य साधनाओं तथा सांख्य के आत्मज्ञान तथा आत्मलीनता का पूरा समर्थन करता है; परंतु अंत में अपनी कृष्णभक्ति की छाप लगाता है।

गीता : छठां अध्याय

. जीवन में संतुलन और स्वरूपस्थिति

श्रीकृष्ण कहते हैं–जो मनुष्य फल की इच्छा त्यागकर करने योग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी ही है। कोई केवल अग्नि का त्याग करने से न संन्यासी है और न निष्क्रिय हो जाना योगी का लक्षण है। संन्यास और योग एक बात है। संकल्पों का त्याग किये बिना कोई योगी नहीं हो सकता। कर्मशील मुनि ही योग में दृढ़ होता है और संकल्प-शून्य हो जाना योगारूढ़ होना है। जब इंद्रियों के भोगों और कर्मों में मनुष्य आसक्त नहीं होता है, तब वह सर्व संकल्पों का त्यागी योग में स्थित कहा जाता है।

"मनुष्य अपने परिश्रम से अपना उद्धार करे। अपने को दुख में न डाले; क्योंकि मनुष्य स्वयं अपना बंधु है और स्वयं अपना शत्रु है।" जिसने अपने मन–इंद्रियों को जीत लिया वह अपना बंधु हो गया, और जिसने अपने मन–इंद्रियों को नहीं जीता, वह अपना शत्रु है।

. उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः गीता ,

जो मनुष्य अपने मन-इंद्रियों को जीतकर परम शांति में प्रतिष्ठित और अपने परम आत्मा में निरंतर लीन है, वह ठंडी-गरमी, सुख-दुख और मान-अपमान में उद्वेगित नहीं होता। पूर्ण योगी वह कहा जाता है, जिसने अपने मन-इंद्रियों पर पूर्ण विजय पायी हो, ज्ञान-विज्ञान द्वारा आत्म-तृप्त और निर्विकार हो और जिसे मिट्टी, पत्थर और सोना एक समान लगे। इतना ही नहीं, हितकारी मित्र, उदासीन, मध्यस्थ, वैरी, बंधु, सज्जन तथा पापी के प्रति जिसकी समता की बुद्धि रहती है, वह अत्यंत श्रेष्ठ योगी एवं संन्यासी है।

योगी संसार की आशा छोड़कर और संग्रह वृत्ति त्यागकर तथा अपने मन-इंद्रियों को जीतकर एकांत स्थान में अकेला ठहरकर अपने चित्त को निरंतर आत्मचिंतन और आत्मस्थिति में लगावे। पवित्र स्थान में जहां जमीन बराबर हो, वहां सुखद आसन बिछाकर उस पर बैठे और मन की शुद्धि के लिए योगाभ्यास करे। ध्यान के समय शरीर, ग्रीवा तथा सिर सिधाई में रखे, इधर-उधर न देखे, आंखें बंद रखे। यदि नींद आने की संभावना हो, तो अर्धखुले नेत्र नासिका के अग्र भाग पर रखे, और स्थिर होकर ध्यान करे। वह ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला हो, निर्भय तथा प्रशांत होकर मन को आत्म-चिंतन अथवा आत्मस्थिति में लगावे, सारे संकल्पों को छोड़कर शांत हो जाय। इस प्रकार मन-इंद्रिय-जित साधक आत्मलीन होकर परम शांति प्राप्त करता है।

हे अर्जुन! बहुत खाने वाले, बिलकुल न खाने वाले, बहुत सोने वाले तथा बिलकुल न सोने वाले का यह योग नहीं सिद्ध होता। किंतु "आहार, विहार, चेष्टा, कर्म, सोना, जागना जिनके संतुलित होते हैं, उनका योग दुखों का नाशक होता है।" जब सभी कामनाओं से मुक्त होकर संयत चित्त होकर आत्मा में ही लीन रहता है, तब साधक योगी कहा जाता है। जैसे वायु-रहित स्थान में जलती हुई दीपक-शिखा प्रकंपित नहीं होती, वैसे योगी का मन वासना-हीन होकर आत्मा में स्थिर हो जाता है। योग के अभ्यास से निरुद्ध चित्त सांसारिकता से उपराम हो जाता है। वह निरंतर आत्मा पर ध्यान रखता है और आत्मा में संतुष्ट होता है। उसकी बुद्धि शुद्ध होती है। वह इंद्रियों से अतीत परम शांति-सुख का अनुभव करता है। वह आत्मस्थिति से विचलित नहीं होता। वह साधक इससे बड़ा लाभ कुछ नहीं मानता, अपितु इसके समान भी अन्य लाभ नहीं है। इस आत्मशांति में स्थित साधक को भयंकर दुख भी विचलित नहीं कर सकता।

. **युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।**
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा गीता ,

दुःख-संयोग-वियोगम् योग-संज्ञितम् (,) दुख के संयोग का वियोग हो जाना योग कहलाता है; *'तम् विद्यात्'* इसको जानना चाहिए। धैर्य धारणकर यह योग-साधना करना चाहिए। संकल्पों से उत्पन्न सभी कामनाओं का त्यागकर तथा मन और इंद्रियों को वश में करके धैर्यपूर्वक धीरे-धीरे सांसारिकता से उपराम होकर मन को आत्मा में स्थित करे और कुछ न सोचे–*आत्म-संस्थम् मनः कृत्वा न किंचित्-अपि चिन्तयेत्* (,)। यह मन जिन विषयों के लिए भागता है, उनसे इसे हटा-हटाकर आत्मा में ही लगावे। जिसका रजोगुण शांत हो गया है, जिसका मन निर्मल हो गया है, ऐसे प्रशांत मन वाले ब्रह्मलीन योगी को उत्तम सुख प्राप्त होता है। निर्मल मन के योगी मन को सदैव सहज आत्मा में ही लगाते हैं और ब्राह्मी स्थिति का अनंत सुख अनुभव करते हैं। योग में लीन साधक अपने को सब में और सबको अपने में देखते हैं; अतएव वे सर्वत्र समदर्शी होते हैं। जो ऐसी समता की स्थिति में जीवन व्यतीत करता है, उसका पतन नहीं होता है। समता को प्राप्त योगी सिद्ध है। हे अर्जुन! जो अपने सुख-दुख के समान सबके सुख-दुख को देखता है, वह सभी अनुकूल-प्रतिकूल दशाओं में शांत रहता है। वह सच्चा योगी है।

अर्जुन ने कहा–हे कृष्ण! जिस समतायुक्त योग को आपने कहा है, मन की चंचलता को देखते हुए उसका पाना कठिन लगता है। मन चंचल है, मथन स्वभाव वाला बड़ा बलवान है। उसका निग्रह करना उसी प्रकार अत्यंत कठिन लगता है जिस प्रकार वायु को पकड़ना। श्रीकृष्ण ने कहा–हे अर्जुन! निस्संदेह मन को वश में करना अत्यंत कठिन है, परंतु अभ्यास और वैराग्य से उसे वश में किया जा सकता है–*अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते* (,)। यह मेरा मत है कि चंचल मन से योग नहीं सधता है; संयत मन से योग सधता है।

अर्जुन ने कहा–यदि योगी अपनी असावधानी से योगभ्रष्ट हो गया, तो उसकी क्या गति होती है ? वह बिखरे हुए बादल की भांति लोक-परलोक से भ्रष्ट तो नहीं हो जाता है ? मेरे इस संशय का आप निवारण करें। आपके समान ज्ञानी मिलना कठिन है।

श्रीकृष्ण ने कहा–हे अर्जुन! उसकी न इस लोक में दुर्गति होती है और न परलोक में। वह पुण्यवानों के बीच में बहुत दिनों तक निवास पाता है, वह उत्तम कुल में जन्म लेता है। वह पहले की देह में किये हुए शुभ कर्मों के जोर से आज साधना में आगे बढ़ जाता है। इतना ही नहीं, वह वेद के कर्मकांड से ऊपर उठ जाता है–*शब्द-ब्रह्म-अति-वर्तते* (,)। वह अपने पूर्व जन्मों के शुभ-कर्मों के बल पर इस जीवन में शीघ्र अपनी साधना में आगे बढ़ जाता है,

और परम गति प्राप्त करता है। आत्मलीन योगी कर्मकांडियों, तपस्वियों तथा शास्त्रज्ञानियों से श्रेष्ठ है।

संपूर्ण योगियों में वह श्रेष्ठ है जो अपने अंतरात्मा से मेरे में लगा हुआ मुझे ही भजता है। वह मुझे सर्वाधिक प्रिय है (अध्याय)।

मीमांसा

पाठक स्वयं विचार करें कि युद्ध-क्षेत्र में उक्त प्रवचनों से क्या मेल खाता है ? वस्तुतः लेखक ने अपने विचार श्रीकृष्ण-अर्जुन-संवाद के रूप में लिखा है। लेखक विद्वान, बहुज्ञ तथा साधक है, साथ-साथ श्रीकृष्ण का भक्त है। इसी से वह उन्हीं के मुख से अपनी भक्ति-भावना की बात कहलवाता है। ध्यान रहे, दूसरे में मन लगाने से कल्याण नहीं होता है, अपितु आत्मा में ही स्थित होने से कल्याण है।

गीता : सातवां से ग्यारहवां अध्याय

. श्रीकृष्ण पर आरोपित विभूति

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे पार्थ! मेरे में मन से आसक्त होकर, मेरा आश्रय लेकर, संशय-रहित मेरे परायण होकर जैसे तुम योग में लग सकते हो उसे सुनो। मैं उसे कहूंगा। उसको सुनकर तुम्हें और कुछ सुनना नहीं रहेगा। हजारों मनुष्यों में कोई एक कल्याण के लिए यत्न करता है और यत्न करने वालों में कोई बिरला मेरे को ठीक से जानता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, ये आठ प्रकार की मेरी प्रकृति है। और दूसरी मेरी प्रकृति जीवों का समुच्चय है। इन दोनों प्रकृतियों से सृष्टि होती है, और मैं इन सबका कारण हूं। मेरे अलावा कोई कारण नहीं है। जैसे सूत्र में मणियां पिरोयी रहती हैं, वैसे मेरे में सारा संसार गुंथा हुआ है। मैं जल में रस हूं, चंद्रमा और सूर्य में प्रकाश हूं, वेदों में ओंकार हूं, आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूं। मैं पृथ्वी में गंध, अग्नि में तेज, संपूर्ण प्राणियों में जीवन तथा तपस्वियों में तप हूं। मैं संपूर्ण जगत का सनातन बीज, बुद्धिमानों की बुद्धि और तपस्वियों का तेज हूं। मैं बलवानों का निर्मल बल और सभी प्राणियों में मर्यादित काम हूं। तीनों गुणों—सत, रज, तम से उत्पन्न होने वाली सभी सत्ता मैं हूं। परंतु मैं न उनमें हूं और न वे मेरे में हैं। सब जीव त्रिगुणात्मक माया से मोहित हो रहे हैं, इसलिए वे मुझे नहीं समझते। मेरी माया बड़ी दुस्तर है, किंतु जो मनुष्य निरंतर

मुझे ही भजते हैं वे माया से तर जाते हैं। जो माया से ठगा गये हैं ऐसे असुर, नीच, पापी और मूढ़ लोग मुझे नहीं भजते। मुझे भजने वाले चार प्रकार के लोग हैं–अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी। उनमें से जो निरंतर मेरे में लगा हुआ है वह ज्ञानी उत्तम है। वह मुझे प्रिय है और मैं उसे प्रिय हूं। वैसे मेरे सब भक्त उदार हैं, परंतु ज्ञानी अति उत्तम है।

बहुत जन्मों की तपस्या के फल में कोई समझता है कि श्रीकृष्ण ही सब कुछ हैं, ऐसा मुझे भजने वाला दुर्लभ है। भोगों की इच्छा वाले विषयी लोग नाना देवताओं को भजते हैं। मैं उन सबकी पूजा उन देवताओं के माध्यम से स्वीकारता हूं और मेरे द्वारा ही उनको इच्छित फल मिलता है। परंतु देवता को पूजने वाले अल्प बुद्धि के हैं। उनकी पूजा से उन्हें अल्प फल मिलता है। परंतु जो मेरे भक्त हैं वे चाहे जैसे हों, वे मुझे ही प्राप्त होते हैं। मूढ़ लोग समझते हैं कि कृष्ण भी एक साधारण मनुष्य है जिसने अन्य मनुष्य की तरह जन्म लिया है। इसमें कारण है कि मैं अपनी योग माया से छिपा हुआ हूं। इसलिए मुझे लोग नहीं समझ पाते हैं। मैं बीते हुए, वर्तमान तथा भविष्य–सबको जानता हूं; परंतु मुझे कोई नहीं जानता है। संसार तो मोह–वश मूढ़ है। जो निर्मल मन के हैं वे मुझे समझते हैं और मुझे भजते हैं। जो मेरी शरण में आकर कल्याण चाहते हैं, वे ब्रह्म को तथा संपूर्ण अध्यात्म को जानते हैं।

आगे आठवें अध्याय में कुछ प्रचलित दार्शनिक मान्यताओं का वर्णन है। उसी बीच कहा गया है कि फल सिद्धि को प्राप्त महात्मा जन मुझे प्राप्त कर दुख का घर क्षणभंगुर पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करते हैं–*माम्–उपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयम्–अशाश्वतम् न–आप्नुवन्ति* (,)। हे अर्जुन! ब्रह्मलोक तक सारे लोक ऐसे हैं जहां जाकर पुनः संसार में लौटना पड़ता है, परंतु मुझे प्राप्त करके पुनर्जन्म नहीं होता है (,)। इसके आगे देवयान–पितृयान आदि का वर्णन है।

इस अध्याय के अंत में कहा गया है कि योगी वेद, यज्ञ, तप, दान, पुण्य–फल सबसे पार होकर सनातन परम पद प्राप्त करता है।

आगे नवें अध्याय में भी श्रीकृष्ण के मुख से उनके ऐश्वर्य का वर्णन करवाया गया है। जैसे–मेरी अध्यक्षता में ही प्रकृति जगत की रचना करती है जिससे संसार–चक्र घूम रहा है (,)। परंतु मूढ़ लोग मुझे एक शरीरधारी मात्र समझते हैं। उनकी आशा व्यर्थ है, कर्म व्यर्थ हैं, ज्ञान व्यर्थ है। वे अज्ञानी राक्षसी–आसुरी–मोहिनी माया से पराभूत हैं। परंतु सद्गुणसंपन्न महात्माजन मुझे परमात्मा मानकर भजते हैं (, –)। वस्तुतः क्रतु (यज्ञ), स्वधा, औषध,

मंत्र, घृत, अग्नि, हवन-क्रिया मैं ही हूं। मैं ही संसार को धारण करने वाला हूं। मैं ही माता, पिता, पितामह, ज्ञेय, ओंकार तथा चारों वेद हूं। परम धाम, भर्ता, स्वामी, साक्षी, मित्र, उत्पत्ति-प्रलय, सर्वाधार मैं ही हूं। मैं ही सूर्य रूप में तपता हूं, मैं ही वर्षा करता हूं। मैं ही अमृत, मृत्यु, सत तथा असत हूं। मुझे ही वैदिक कर्मकांडी पूजकर यज्ञों द्वारा स्वर्ग पाना चाहते हैं। वे स्वर्ग में जाकर पुण्यक्षीण होने पर मृत्यु लोक में आते हैं। जो भक्त अनन्य भाव से मेरा ही चिंतन करते हैं, मैं स्वयं उनका योग-क्षेम वहन करता हूं। जो अन्य देवताओं को पूजते हैं, वे मानो मुझे ही पूजते हैं; परंतु वे अज्ञानी हैं। क्योंकि संपूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी मैं ही हूं; किंतु वे मुझे ऐसा नहीं जानते। देवता, पितर तथा भूतों को पूजने वाले उन्हीं को प्राप्त करेंगे; किंतु मुझे पूजने वाला मुझे प्राप्त होगा। भक्त मुझे प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पित करता है, मैं उनको खाता हूं। हे अर्जुन! अपने कर्म, भोजन, हवन, दान, तपादि मुझे अर्पित करो। ऐसा करने से तुम मुक्त होकर मुझे ही प्राप्त होओगे। मैं तो सब प्राणियों में समान रूप से हूं, अतएव मुझे न कोई प्रिय है न अप्रिय, परंतु जो भक्त मुझे प्रेम से भजते हैं, वे मुझ में हैं और मैं उनमें हूं। यदि भयंकर दुराचारी हो, किंतु वह मुझे भजता है, तो उसे साधु ही मानना चाहिए। वह शीघ्र धर्मात्मा होकर शाश्वत शांति पायेगा। मेरा भक्त नष्ट नहीं होता। हे अर्जुन! पापयोनि स्त्री, वैश्य, शूद्र भी मेरी शरण में आकर परम गति को पा जाते हैं; फिर पुण्ययोनि ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए क्या पूछना! ये यदि मेरे भक्त होते हैं तो इनका कल्याण धरा-धराया है। इसलिए अर्जुन! तू मेरा भजन कर, मुझ में मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन कर, मुझको प्रणाम कर, अपने को मुझ में लगाकर मेरे परायण हो, फिर तू मुझे ही प्राप्त होगा।

दसवें अध्याय में श्रीकृष्ण पुन: कहते हैं—तुमसे मैं अपने परम वचन कहना चाहता हूं। मेरी उत्पत्ति और रहस्य को न देवता जानते हैं, न महर्षिगण जानते हैं; मैं इन सबका आदि हूं। जो मुझे अजन्मा और सब लोकों का परमेश्वर जानता है वह ज्ञानी सब पापों से मुक्त हो जाता है। बुद्धि, ज्ञान, मोह-मूढ़ता, क्षमा, सत्य, दम, शम, दुख, सुख, उत्पत्ति, प्रलय, अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, कीर्ति, अपकीर्ति आदि नाना भाव जो प्राणियों में होते हैं, ये मुझसे ही होते हैं। चार या सात महर्षि, मनु आदि मेरे संकल्प से पैदा हुए हैं, जिनकी संसार में पूरी प्रजा है। जो मेरे इस ऐश्वर्य को जानता है वह योगयुक्त हो जाता है। मैं ही सारे संसार की उत्पत्ति का कारण हूं। सारा जगत मेरी प्रेरणा से चेष्टा करता है। ऐसा समझकर बुद्धिमान लोग मेरा ही भजन करते हैं। वे मेरे में मन लगाते हैं, अपने प्राण अर्पित करते हैं, परस्पर मेरा गुणगान करते हैं, मेरे में ही संतुष्ट रहते हैं

और मेरे में ही रमते हैं। मैं उनको अपना बुद्धि–योग देता हूं, जिससे वे मुझे ही प्राप्त होते हैं। मैं उनके ऊपर कृपा कर अपने ज्ञान द्वारा उनका अज्ञान–अंधकार नष्ट कर देता हूं।

अर्जुन ने कहा–हे कृष्ण! आप परम ब्रह्म, परम धाम तथा परम पवित्र हैं। सभी ऋषि आपको ही अजन्मा, देवादिदेव परम ब्रह्म कहते हैं। देवर्षि नारद, ऋषि असित और देवल तथा व्यास भी यही कहते हैं। आप तो कह ही रहे हैं। मैं आपका कहा हुआ पूरा सत्य मानता हूं। आपके तत्त्व को न देवता जानते हैं न दानव। हे भूतों को उत्पन्न करने वाले भूतों के ईश्वर, देवों के देव, जगत के स्वामी, पुरुषोत्तम! आप ही आपको ठीक से जानते हैं। अपनी पूरी विभूति आप ही बता सकते हैं। आपकी ही विभूति संसार में व्याप्त है। मैं आपको कैसे जानूं ? मैं कैसे आपका चिंतन करूं ? अपनी महिमा आप स्वयं पुन: विस्तार से कहिए। आपके भाषण से मैं तृप्त नहीं हो रहा हूं।

श्रीकृष्ण ने कहा–मेरी विभूति का अंत नहीं है। मैं तुम्हें उसको सुनाऊंगा। मैं सबके हृदय में स्थित सबका आत्मा हूं। मैं ही सभी प्राणियों का आदि, मध्य और अंत हूं। मैं आदित्यों में विष्णु, ज्योतियों में सूर्य, मरुतों में तेज तथा नक्षत्रों में चंद्रमा हूं। मैं वेदों में सामवेद हूं, देवों में इंद्र, इंद्रियों में मन और प्राणियों में चेतना हूं। मैं रुद्रों में शंकर, यक्ष–राक्षसों में कुबेर, वसुओं में अग्नि और पर्वतों में उच्च शिखर वाला सुमेरु पर्वत हूं। मैं पुरोहितों में मुखिया बृहस्पति हूं, सेनापतियों में कार्तिकेय और जलाशयों में समुद्र हूं। मैं महर्षियों में भृगु, शब्दों में ओंकार, यज्ञों में जपयज्ञ, स्थिर रहने वालों में हिमालय हूं। मैं वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद, गंधर्वों में चित्ररथ, सिद्धों में कपिल, घोड़ों में उच्चैश्रवा, हाथियों में ऐरावत, मनुष्यों में राजा, हथियारों में वज्र, गायों में कामधेनु, प्रजनन में काम, सर्पों में वासुकि, नागों में शेषनाग, जल देवताओं में वरुण, पितरों में अर्यमा, शासकों में यमराज, दैत्यों में प्रह्लाद, गणना में समय, पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड, पवित्र करने वालों में वायु, शस्त्रधारियों में श्री राम, मछलियों में मगर और नदियों में गंगा हूं। मैं सृष्टि का आदि, मध्य और अंत हूं। मैं विद्याओं में अध्यात्मविद्या, विवाद में वाद, अक्षरों में अकार, समासों में द्वंद्व, कालों में महाकाल, सबको धारण करने वाला तथा सब तरफ मुख वाला हूं। मैं सबका नाशक मृत्यु हूं, सबका उत्पन्न करने वाला हूं, मैं स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं। मैं श्रुति–गायन में बृहत साम, छंदों में गायत्री, महीनों में मार्गशीर्ष (अगहन–दिसंबर), ऋतुओं में वसंत, छलों में जुआ, तेजों में तेज तथा विजय, निश्चय तथा सात्विक भाव हूं। मैं वृष्णि वंशियों

में कृष्ण, पांडवों में अर्जुन, मुनियों में वेदव्यास, कवियों में शुक्राचार्य, दमन में दंड, जीत की इच्छाओं में नीति, गुप्तभावों में मौन, ज्ञानवानों का तत्त्वज्ञान हूं। मैं सबका उत्पत्ति-कारण तथा सर्वस्व हूं। मेरी दिव्य विभूतियों का अंत नहीं है। मैंने अभी तक जो कुछ कहा है वह तो थोड़ा है। यह समझो कि जो कुछ संसार में तेजवान है, वह सब मेरे तेज का अंश है।

आगे ग्यारहवें अध्याय का विषय विश्वरूप दर्शन है। अर्जुन ने उसे देखना चाहा, तो श्रीकृष्ण ने कहा—तुम मेरे विविध रूपों वाला विराट स्वरूप देखो। आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनी, मरुत आदि के विस्तार को देखो। मेरे शरीर में देखो, पूरा संसार इसमें विद्यमान है। तुम अपने साधारण नेत्रों से इसे नहीं देख सकते हो; इसलिए मैं तुम्हें दिव्य नेत्र देता हूं। फिर तो श्रीकृष्ण ने अपने शरीर में बड़ा विराट रूप दिखाया। हजारों सूर्य के प्रकाश जैसा प्रकाश उसमें दिखायी दिया। उसमें बहुत-से हाथ, पैर, मुख, पेट थे। उसी में कौरव-पांडव के दल कटते-मरते दिखे। द्रोण, भीष्म, दुर्योधन, कर्ण आदि उस विराट स्वरूप के मुख में पिसते हुए दिखे। श्रीकृष्ण ने ललकारा कि ये सब मेरे द्वारा मरे हुए हैं; अतएव अर्जुन! तुम इन मरे हुए को मारकर राज्य-सुख का भोग करो। फिर तो अर्जुन ने भयभीत होकर नमस्कार किया और सौम्य विष्णु रूप देखने के लिए इच्छा जाहिर की; अतएव श्रीकृष्ण विष्णु के स्वरूप में प्रकट हो गये। अर्जुन ने अपने से हुई गलतियों के लिए क्षमा मांगी। श्रीकृष्ण अपना दुर्लभ स्वरूप दिखाकर शांत हो गये (अध्याय -)।

मीमांसा

भक्ति के बिना कल्याण नहीं है; किंतु जब भक्त में भक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है तब वह श्रद्धातिरेक में पड़ जाता है। संसार के महापुरुष जो स्वयं न जानते हों, उसे भक्तों ने उनके मुख से कहलवा लिया है। भक्त-लेखक ने श्रीकृष्ण महाराज के मुख से जो कुछ ऊपर कहलवाया है विवेकवान पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि सारा कथन अतिशयोक्तियों से भरा है। श्रीकृष्ण महाराज महान थे, परंतु वे एक मनुष्य थे। कोई उनको मनुष्य न कह दे, इसी डर से लेखक ने श्रीकृष्ण के मुख से कहलवा दिया है—मूढ़ मुझे नहीं समझते हैं कि कृष्ण अजन्मा परमेश्वर हैं (,)। मूढ़ लोग मुझे साधारण मनुष्य मानते हैं। उनकी आशा, कर्म, ज्ञान सब व्यर्थ हैं। वे अज्ञानी हैं, आसुरी तथा राक्षसी प्रकृति के मोहग्रस्त हैं (, -)।

महापुरुषों के प्रति एक सीमा तक भक्ति-भावना रखना ठीक है; परंतु उन्हें संसार का कर्ता, धर्ता, हर्ता बना देना भटकना और भटकाना है। जिनको

अवतार, ईश्वर तथा पैगंबर बनाया जायगा, उनके लिए घोर अतिशयोक्ति की जायगी जो मानसिक विक्षिप्तता होगी। अतिश्रद्धा हिंसा का रूप लेगी। ऐसा व्यक्ति दूसरे महापुरुष को नहीं समझ सकता है।

वैष्णव-भक्त वर्णव्यवस्था को ढील रखते थे, इसीलिए स्त्री, वैश्य और शूद्र कहे जाने वालों के लिए कृष्ण-भक्ति करके कल्याण होने की बात कही गयी, परंतु उन्हें पापयोनि कह डाला गया जो अपराध है। मानव मात्र मौलिक रूप से एक योनि का है। अपने गुण-कर्मों से आगे चलकर मनुष्य अच्छा-बुरा होता है। मेहतर को पाप-योनि कहना भी महापाप है। ब्राह्मण तथा जगद्गुरु कहलाने वाले भी प्रातः उठकर मेहतर का ही काम करते हैं। अपनी टट्टी स्वयं सब धोते हैं। सबके पेट में टट्टी है, फिर कौन मेहतर नहीं है; सब चाम से लिपटे हैं, कौन चमार नहीं हैं और सबके भीतर चेतन-ब्रह्म बैठा है, फिर कौन ब्राह्मण नहीं है। कबीर साहेब ने कहा– *सतगुरु के परिचय बिना, चारों बरन चमार* (बी० सा०)। देहाभिमानी चमार है और आत्माराम मनुष्य ब्राह्मण है।

लेखक ने श्रीकृष्ण के मुख से ही उनको सबका कर्ता, धर्ता, प्रेरयिता तथा मूल कहला डाला, परंतु श्रीकृष्ण चाहकर भी दुर्योधन को न समझा पाये, महाभारत युद्ध नहीं रोक पाये, अपने परिवार के लोगों को घोर शराबपान से नहीं रोक पाये और गृह-कलह तथा गृह-युद्ध नहीं रोक पाये। अंततः यदुकुल का विनाश नहीं रोक पाये। घोर भक्त कहेंगे कि यह सब उनकी लीला है। ईश्वरवादियों, दैववादियों, पैगंबरवादियों, अवतारवादियों, संप्रदायवादियों और तथाकथित धर्मवादियों को वस्तु-विवेक और सत्य से कोई प्रयोजन ही नहीं है। जो अपने इष्ट के संबंध में जितना झूठ बोलने में आगे निकल जाय वह उतना ही बड़ा ईश्वर-भक्त है। आप कहेंगे सौ झूठ तो हम कहेंगे हजार झूठ, यह भगवान के भक्तों में होड़ है।

गीता लेखक ने श्रीकृष्ण के शरीर में अनंत विश्व-ब्रह्मांड दिखा दिया, तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस के उत्तर कांड में काकभुशुंडि को बालक-राम के पेट में प्रवेश कराकर अनंत ब्रह्मांड दिखा दिया। उन्हें दो घड़ी में अरबों वर्ष उसमें रहने का अनुभव करा दिया। गीता लेखक ने श्रीकृष्ण से कहला दिया कि मैं शस्त्रों में वज्र हूं। आज गीता लिखी जाती तो लेखक लखता कि मैं शस्त्रों में परमाणु-बम हूं, वैज्ञानिकों में आईंस्टीन हूं, वाहनों में राकेट हूं आदि। सत्य की कैसी छीछालेदर है! श्रीकृष्ण के सच्चे मनुष्यत्व पर घोर आवरण है, और यही बात प्रायः हर मतवादी की है।

गीता : बारहवां अध्याय

. उत्तम भक्त का लक्षण और प्राप्ति की परख

अर्जुन पूछते हैं–कुछ लोग अव्यक्त ब्रह्म की उपासना करते हैं और कुछ लोग आपकी, तो हे कृष्ण! इन दोनों में श्रेष्ठ कौन है ? श्रीकृष्ण ने कहा–मुझको भजने वाले अत्यंत श्रेष्ठ हैं। वे ही उत्तम योगी हैं। परंतु निर्गुण ब्रह्म को भजने वाले भी मुझे ही प्राप्त होते हैं। निर्गुण ब्रह्म का भजन कठिन है; परंतु मेरा भजन करना सरल है। उनका मैं शीघ्र ही बेड़ा पार कर देता हूं। इसलिए हे अर्जुन! तुम अपने मन और बुद्धि को मुझमें लगाओ, फिर तुम निस्संदेह मुझमें ही निवास करोगे। यदि तुम दृढ़ मन से मुझ में लीन नहीं हो सकते हो, तो योगाभ्यास से मुझे प्राप्त करने की इच्छा करो। यदि तुम योगाभ्यास से मुझे प्राप्त करने का बल नहीं रखते हो, तो कर्मफल मुझे समर्पित करके मेरे लिए कर्म करो, इससे तुम मुझे ही प्राप्त होओगे। अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यान से कर्मफल त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्याग से ही शांति मिलती है।

जो मनुष्य सब प्राणियों से द्वेष रहित रहता है, सबको मित्रता एवं करुणा से देखता है, ममता-हीन तथा अहंकारशून्य रहता है, क्षमाभाव वाला है, निरंतर संतुष्ट है, और संयत होकर दृढ़ता से मुझमें मन-बुद्धि समर्पित कर मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है। जिसके व्यवहार से दूसरे उद्वेगित नहीं होते हैं, वह स्वयं भी दूसरों से उद्वेगित नहीं होता है, और जो हर्ष, अमर्ष, भय तथा उत्तेजना से रहित है, वह भक्त मुझको प्रिय है। जो मनुष्य इच्छा-रहित, अंदर-बाहर शुद्ध, कुशल, निष्पक्ष, दुखहीन तथा अनारंभ है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है। जो हर्ष-शोक से पार है, कामना और द्वेष से रहित है, जो शुभाशुभ का त्यागी है, वह भक्त मुझे प्रिय है। जो मनुष्य शत्रु-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुख में समान-भाव वाला तथा आसक्तिरहित है, निंदा-स्तुति पाकर उनमें समता-बुद्धि रखता है, वाक्यसंयमी, शरीर-निर्वाह में जिस किसी प्रकार की स्थिति प्राप्त हो उसमें संतुष्ट, घर की ममता से रहित तथा स्थिर बुद्धि है, वह मुझे प्रिय है। परंतु जो ऊपर के सद्गुणरूपी धर्म-अमृत का सेवन करते हुए मेरे में अनन्य श्रद्धा रखकर मेरे परायण हैं; वे भक्त मुझको अत्यंत प्रिय हैं (अध्याय)।

मीमांसा

ऊपर जो समता, संयम, निर्मानता आदि सद्गुणों का वर्णन है वह सार्वभौमिक तथा सर्वसम्मत है। परंतु लेखक जो श्रीकृष्ण से कहलवाता है कि

सब प्रकार के साधक मुझे ही पाते हैं, यह केवल भावुकता है। श्रीकृष्ण हों या अन्य देहधारी मनुष्य, जो देह छोड़ चुके हैं, उनसे मिलना असंभव है। श्रीकृष्ण का शरीर छूटे पांच हजार वर्ष से अधिक हो गया माना जाता है। उनके शरीर के कणों का पता नहीं लग सकता कि वे कहां हैं। जीवात्मा सभी के अदृश्य और असंग हैं। उनसे अन्य जीवात्मा का मिलना असंभव है। फिर श्रीकृष्ण को प्राप्त करने का तात्पर्य क्या हो सकता है ? श्रद्धातिरेक में लिख-बोल कर लोगों को केवल भटकाना है।

जीवित या विगत किसी महापुरुष में श्रद्धा रखकर अपना मन पवित्र करने की साधना करना आरंभिक साधना में ठीक है, परंतु प्राप्त तो कुछ भी नहीं हो सकता। उच्चतम अध्यात्म स्थिति का अर्थ है सारे अनात्म दृश्य का छूट जाना और शेष स्वयं आत्मा का रह जाना। मन से ही कुछ प्राप्त होता है, और मन का सर्वथा शून्य हो जाना ही उच्चतम समाधि है और यही सच्ची उपलब्धि है, फिर मिलेगा क्या और कौन ?

लेखक जो श्रीकृष्ण से यह कहलाया है कि निर्गुण-सगुण सारी उपासनाओं को करने वाले मुझे ही प्राप्त होते हैं, केवल भावुकता है और साधकों को भटका देना है। सब वासनाओं के सर्वथा छूट जाने पर आत्मा शेष रह जाता है। यही आध्यात्मिक साधना की परम उपलब्धि है। आत्मा ही परम सत्ता है जो नित्य प्राप्त है। अनात्म-वासना छोड़कर अपने आप में स्थित हो जाना है, शांत हो जाना है। पाना तो कुछ भी नहीं है।

गीता : तेरहवां अध्याय

. क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ एवं जड़-चेतन-विवेक

हे अर्जुन! यह शरीर क्षेत्र (खेत) है और इसको जानने वाला चेतन आत्मा क्षेत्रज्ञ है। सभी क्षेत्रों का क्षेत्रज्ञ मुझे समझो। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है। अर्थात प्रकृति-पुरुष का भिन्न ज्ञान सच्चा ज्ञान है। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ एवं प्रकृति-पुरुष के विषय में वेदों के मंत्रों में अनेक प्रकार से कहा गया है। ब्रह्मसूत्र के पदों में भी इसके विषय में कहा गया है–*ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव* (,)।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, बुद्धि, दस इंद्रियां, मन, पांच विषय, मूल प्रकृति, इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, धारणाशक्ति, देह और जानने की क्रिया संक्षेप में विकार युक्त क्षेत्र है। जीव के निवास करने से शरीर में जानने की क्रिया चलती है।

अमानित्व, अदंभित्व, अहिंसा, क्षमा, सरलता, गुरु-उपासना, अंतर-बाहर शुद्धि, स्थिरता, मन-इंद्रियों पर संयम, विषयों से वैराग्य, अहंकार-शून्यता, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि में दोष-दर्शन, पुत्र-दार-घर आदि से अनासक्ति, प्रिय-अप्रिय में नित्य समता, निर्भयता, मुझमें अनन्य भक्ति, एकांतवास, भीड़भड़क्का से उदासीनता, आत्मा में नित्य स्थिति, तत्त्वज्ञान का साक्षात्कार, यह सब ज्ञान है। इसके विपरीत जो कुछ है, वह अज्ञान है।

कुछ श्लोकों में ब्रह्म का भावुकतापूर्ण वर्णन करके आगे कहा गया है कि जो ज्योतियों का ज्योति है और माया से अत्यंत परे है, बोधस्वरूप, जानने योग्य और विवेक से पाने योग्य है, वह सबके हृदय में स्थित है। यही संक्षेप में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान है।

प्रकृति और पुरुष को अनादि समझो। त्रिगुणात्मक सारा कार्य पदार्थ जड़ प्रकृति का विकार है। प्रकृति कारण है और सारे कार्य पदार्थ उसी से निर्मित हैं। सुख-दुख का भोग पुरुष को होता है। चेतन पुरुष जड़ प्रकृति के कार्य-पदार्थों में मोहकर उन्हें भोगता है और उसके परिणाम में वह ऊंची-नीची योनियों में भटकता है। "यह देह में रहने वाला आत्मा वस्तुतः परमात्मा ही है। यह साक्षी होने से द्रष्टा है, मन-इंद्रियों का प्रेरक होने से अनुमंता है, देह का धारण-पोषण करने वाला होने से भर्ता है, कर्मों का फल भोगने वाला होने से भोक्ता है, सारे ज्ञान-विज्ञान का स्वामी होने से महेश्वर है और प्रकृति-पार परम शुद्ध होने से परमात्मा है।" इस प्रकार जो मनुष्य गुणों के सहित जड़-प्रकृति को और उससे सर्वथा भिन्न चेतन पुरुष को जानता है, वह जड़ दृश्य से अनासक्त होकर जीवन व्यतीत करता है और पुनः जन्म नहीं लेता। कितने लोग ध्यान द्वारा आत्म-साक्षात्कार करते हैं, कितने लोग त्याग द्वारा आत्मलीन होते हैं और कितने लोग निष्काम कर्म द्वारा आत्म-संतोष में स्थित होते हैं। कितने मंद बुद्धि के लोग दूसरों द्वारा सुनकर उसके अनुसार उपासना करते हैं।

हे अर्जुन! स्थावर-जंगम जो कुछ निर्मित होता है वह जड़-चेतन के ही संयोग से है। इन नाशवान वस्तुओं से भिन्न आत्मा अविनाशी है। जो सब में परमात्मा को देखता हुआ सबसे समता का व्यवहार करता है, वह अपने को पतन से बचा लेता है। आत्मा अनादि, निर्गुण तथा अविनाशी है। वह शरीर में रहते हुए भी मूलतः अकर्ता है। जो इस बोध में रहता है, वह कहीं बंधन में नहीं

. उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः गीता ,

पड़ता। जैसे एक सूर्य सारे संसार को प्रकाश देता है, वैसे सभी देहों में आत्मा उनके प्रकाशक हैं। जो मनुष्य क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, देह और आत्मा के भेद को तथा देहासक्ति छोड़कर मुक्ति स्थिति को जानता है, वह जड़ दृश्य का मोह छोड़कर परम स्थिति को प्राप्त करता है (अध्याय)।

मीमांसा

इस अध्याय के दूसरे श्लोक में कहा गया–*क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।* हे अर्जुन! तुम सभी क्षेत्रों का क्षेत्रज्ञ मुझे समझो। अर्थात सभी देहों के जीवात्मा मुझे समझो। यह लेखक की भावुकता है। वह श्रीकृष्ण को सभी देहों का आत्मा बताकर भ्रम पैदा करता है। वस्तुतः सब देहों के आत्मा अलग-अलग हैं और वे ही उनमें कर्ता-भोक्ता हैं।

चौथे श्लोक में कहा गया है कि प्रकृति-पुरुष के विवेक को वेद-मंत्रों में ऋषियों ने अनेक प्रकार से कहा है और ब्रह्मसूत्र के पदों में भी कहा है–*ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव।* ध्यान देना चाहिए ब्रह्मसूत्र वादरायण का लिखा हुआ हिंदू छह दर्शनों में वेदांत दर्शन है; और उसमें बौद्ध मत के उन मतों का खंडन किया गया है जिसकी स्थापना ईसा के दो सौ वर्ष बाद हुई है। उसके प्रचार में समय लगा होगा, तब उसे ब्रह्मसूत्र में लिखकर आलोचना हुई। ब्रह्मसूत्र के प्रचार में समय लगा होगा, तब ब्रह्मसूत्र का नाम गीता में आया। इस प्रकार गीता तथा महाभारत के कितने ही अंश ईसा के तीन-चार सौ वर्ष बाद तक बनते रहे।

गीताकार क्षमा, समता, वैराग्य आदि सद्‌गुणों का खूब वर्णन करता है जो सार्वभौमिक और सर्वमान्य हैं; परंतु बीच-बीच में श्रीकृष्ण महाराज को अलौकिक, दुनिया भर का कर्ता, धर्ता और उद्धारकर्ता सिद्ध करने में अपनी कलम तोड़ देता है जो ज्ञान के क्षेत्र में भ्रम पैदा करना है। यही ढर्रा सभी अवतारवादियों, ईश्वरवादियों, पैगंबरवादियों और संप्रदायवादियों का है। इस रवैया ने धर्म के क्षेत्र में भ्रम, अज्ञान, हिंसा, पक्षपात और अंधविश्वास फैलाया है।

गीता : चौदहवां अध्याय

. तीनों गुण वालों की गति और गुणातीत दशा

श्रीकृष्ण कहते हैं कि परम उत्तम ज्ञान मैं पुनः कहूंगा जिससे मुनिजन संसार-सागर से पार हो गये हैं। इस ज्ञान का सहारा लेकर और मेरे स्वरूप को

पाकर मनुष्य जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। मेरी महत् ब्रह्मरूप मूल-प्रकृति संपूर्ण सृष्टि की योनि है और मैं उसमें गर्भाधान करता हूं जिससे सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है। नाना योनियों की मूर्तियां अर्थात प्राणी उत्पन्न होते हैं। उसमें महत्-ब्रह्म-प्रकृति योनि बनती है, और मैं उसमें बीज स्थापन करता हूं।

सत, रज और तम ये तीनों गुण प्रकृति से उत्पन्न हैं और ये ही अविनाशी जीवात्मा को बांधते हैं। सत्व गुण निर्मल और प्रकाश रूप है, वह ज्ञान के अभिमान में जीव को बांधता है। रजोगुण तृष्णा से उत्पन्न है, यह कर्मों की आसक्ति से बांधता है। तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न है, यह जीव को प्रमाद, आलस्य, निद्रादि से बांधता है। सत्व गुण सुख में लगाता है, रजोगुण कर्म में और तमोगुण अंधकार में ढकेलकर प्रमाद में लगाता है। रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सतोगुण बढ़ता है, सत्वगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है, और सत्वगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है। जब मन में ज्ञान-विवेक की प्रबलता होती है, तब सत्वगुण बढ़ा समझना चाहिए; जब लोभ, जगत्प्रवृत्ति, क्रिया बहुलता, अशांति, लालसाएं बढ़ी हों तब रजोगुण बढ़ा हुआ समझना चाहिए, और जब अज्ञान, आलस्य, व्यर्थ चेष्टाएं तथा मोह उत्पन्न हो तब तमोगुण बढ़ा हुआ समझना चाहिए।

सत्वगुण की वृद्धि की स्थिति में देह त्यागने पर जीव की उच्च गति होती है, रजोगुण की वृद्धि की स्थिति में मरने पर मध्य गति होती है और तमोगुण की वृद्धि की स्थिति में मरने पर जीव अधोगति को पाता है। सात्विक कर्म का फल निर्मल सुख है, रजोगुण का फल दुख है और तमोगुण का फल अज्ञान है। सत्वगुण से ज्ञान, रजोगुण से लोभ और तमोगुण से अज्ञान, प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं। सत्वगुण का फल उत्तम गति है, रजोगुण का फल मध्य गति है और तमोगुण का फल नीच गति है।

जब द्रष्टा यह समझ लेता है कि त्रिगुणात्मक प्रकृति ही करती है, मैं अकर्ता शुद्ध चेतन हूं, गुणातीत हूं, तब वह मेरे स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। आत्मज्ञानी पुरुष तीनों गुणों से ऊपर उठकर जन्म-मरण व्यापार से पार हो जाता है, और अमृत का अनुभव करता है।

अर्जुन ने पूछा—हे प्रभो! जो तीनों गुणों से परे हो जाता है, उसके लक्षण क्या हैं, उसका आचरण कैसा होता है ? श्रीकृष्ण ने कहा—प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह जो सत्व, रज और तम गुण के कार्य हैं, इनके आने पर ज्ञानी न इनसे द्वेष करता है और न इनकी आकांक्षा करता है। वह सब समय उदासीन होकर स्थित रहता है। वह तीनों गुणों से विचलित नहीं होता। गुण गुणों में बरतते हैं, ऐसा

समझकर वह प्रकंपित नहीं होता। वह सुख-दुख, प्रिय-अप्रिय, स्तुति-निंदा मिलने पर शांत एवं सम रहता है। वह धीरवान मिट्टी, पत्थर और सोना को समान समझता है। मान-अपमान, मित्र-शत्रु में समभाव रखने वाला वह ज्ञानी सर्व आरंभों से रहित गुणातीत है। जो व्यक्ति अनन्यभाव से मुझे भजता है, वह तीनों गुणों से पार होकर ब्राह्मी स्थिति प्राप्त करता है, क्योंकि अविनाशी ब्रह्म, अमृत, धर्म और अखंड आनंद का आश्रय मैं ही हूं (अध्याय)।

मीमांसा

इस अध्याय के आरंभ में लेखक श्रीकृष्ण के मुख से अतिशयोक्ति करवाता है। वह प्रकृति को ब्रह्म कहलाता है और सबकी योनि; परंतु गर्भ धारण कराने वाला श्रीकृष्ण को कहता है। वस्तुतः श्रीकृष्ण के जन्म के पहले से ही सृष्टि रही है और उनके निधन के बाद भी सृष्टि चल रही है। श्रीकृष्ण का शरीर केवल एक सौ बीस ( ) वर्ष रहा। लेखक श्रीकृष्ण से अंत में भी कहलाता है कि मैं ही ब्रह्म, अमृत, धर्म तथा आनंद का आश्रय हूं। श्रीकृष्ण अपने ब्रह्म, अमृत, धर्म और आनंद का आश्रय हो सकते हैं। वस्तुतः सभी जीव अपने ब्रह्मत्व, श्रेष्ठत्व, अमृत, धर्म और आनंद का स्वयं आश्रय हैं।

गीता : पंद्रहवां अध्याय

. संसार-वृक्ष की जड़-आसक्ति वैराग्य-कुल्हाड़ी से कटती है

श्रीकृष्ण महाराज कहते हैं–संसार एक पीपल का पेड़ है। उसकी जड़ ऊपर है और शाखाएं नीचे हैं, वेद के छंद उसके पत्ते हैं। इसे जो समझता है वह ज्ञानी है। इस संसार-वृक्ष के विषय-फल जीव को बांधने वाले हैं। परंतु जैसा संसार वृक्ष ऊपर कहा गया है, वह वैसा दिखता नहीं है; क्योंकि इसका–*न-अन्तः न-च आदिः-न च सम्प्रतिष्ठा* (,) अर्थात न संसार का आदि है, न अंत है और न यह स्थिर रहने वाला है; अपितु अनादि-अनंत निरंतर प्रवहमान है। अतएव कल्याण चाहने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह संसार-वृक्ष की आसक्ति रूपी जड़ को वैराग्य के कुल्हाड़े से काटकर अपने अमृत स्वरूप में स्थित हो जाय, जहां से लौटकर इस दुखमय संसार में नहीं आना पड़ता है।

जिनके मान और मोह नष्ट हो गये हैं, जिन्होंने आसक्ति-विष का त्यागकर दिया है, जो सभी कामनाओं से पूर्ण निवृत्त होकर आत्मा में निरंतर लीन हैं और

सुख-दुखों के द्वंद्वों से पूर्ण पार हो गये हैं वे ज्ञानी पुरुष अविनाशी स्वरूप में स्थित हो जाते हैं। उसे सूर्य, चंद्रमा और अग्नि नहीं प्रकाशित कर सकते। वह प्रकृति-पार स्वयं ज्ञान स्वरूप है।

आगे (,) श्रीकृष्ण कहते हैं–देहों में रहने वाले सनातन जीव मेरे ही अंश हैं। ये ही मन-इंद्रियों के प्रेरक हैं। जैसे वायु गंध को लेकर उड़ जाता है वैसे ही यह देह में रहने वाला ईश्वर (जीव) अपने किये-धरे वासनाओं को लेकर आगे शरीर में जाता है। जीव कान, आंख, त्वचा, जिह्वा और घ्राण के सहारे विषयों का सेवन करता है। शरीर को छोड़कर जाते हुए, शरीर में रहते हुए और विषयों का संपर्क करते हुए जीव को अज्ञानी लोग नहीं समझ पाते हैं; विवेकी समझते हैं। संयमी योगी ही आत्मा को समझते हैं, अज्ञानी मनुष्य यत्न करते हुए भी उसे नहीं जानते।

श्रीकृष्ण कहते हैं–सूर्य, चंद्रमा तथा अग्नि में जो प्रकाश है, वह मेरा ही है। मैं ही पृथ्वी में प्रविष्ट होकर सब सत्ता को धारण करता हूं और रसात्मक चंद्रमा होकर सभी औषधियों को पुष्ट करता हूं। मैं ही वैश्वानर अग्नि होकर तथा प्राण-अपान बनकर प्राणियों के शरीर में गये हुए चार प्रकार के भोजन को पचाता हूं। भक्ष्य-चबाकर खाया जाने वाला रोटी आदि; भोज्य–निगला जाने वाला दूध आदि, लेह्य–चाटा जाने वाला चटनी आदि तथा चोष्य–चूसा जाने वाला ईख आदि, सब का पचाने वाला मैं ही हूं। मैं ही सबके हृदय में स्थित हूं। मैं ही स्मरण करता हूं, ज्ञान करता हूं और गलत स्मरणों को हटाता रहता हूं। इतना ही नहीं, सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूं–*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः वेदैः च सर्वैः अहम् एव वेद्यः* (,)।

आगे श्रीकृष्ण कहते हैं–क्षर और अक्षर दो तत्त्व हैं। जड़ प्रकृति क्षर परिवर्तनशील है और जीवात्मा अक्षर–अविनाशी है। मैं क्षर-अक्षर से परे उत्तम हूं और सबको धारण करता हूं। हे अर्जुन! जो इस प्रकार मुझे क्षर-अक्षर-प्रकृति-पुरुष से श्रेष्ठ पुरुषोत्तम एवं परमात्मा समझता है वह श्रेष्ठ ज्ञानी है। वह मुझे भजता है। यह मैंने अत्यंत गूढ़ ज्ञान कहा। इसे समझकर ज्ञानी कृतार्थ हो जाता है (अध्याय)।

मीमांसा

भावुक भगवत-भक्त श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष से अतिशयोक्ति करवाता है–*ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः* (,)। अर्थात इस संसार में सनातन जीव मेरा ही अंश है। ध्यान रहे, सनातन (अविनाशी) अंश नहीं होता और अंश

सनातन नहीं होता। अंश टुटे हुए को कहते हैं। सनातन तत्त्व चेतन किसी का अंश नहीं है।

श्रीकृष्ण का ही प्रकाश चांद, सूर्य, अग्नि आदि में है, घोर अतिशयोक्ति है। शरीर में रहकर खाद्यों को पचाने वाला, सबके हृदय में रहने वाला, ज्ञान करने वाला और गलत विचारों का *'अपोहन'* (,) हटाने वाला और समस्त वेदों से जानने योग्य मनुष्य का स्वतः आत्मा है। इसी को कृष्ण कहा जाय तो कोई बात नहीं; किंतु देवकी–पुत्र पर यह बात नहीं घटेगी।

क्षर परिवर्तनशील जड़ प्रकृति तथा उसके कार्य–पदार्थ हैं और अक्षर (अविनाशी–निर्विकार) नाना आत्मा हैं। ये अपने गुण–धर्मों से नित्य हैं। इनके ऊपर निःअक्षर की कल्पना केवल कल्पना है। विकारी जड़ प्रकृति और निर्विकारी नाना पुरुष अर्थात चेतन, ये ही सत्य हैं। *प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि* (,) ही यथार्थ है। जब ये दोनों अनादि हैं तब इनके अन्य कर्ता होना संभव ही नहीं है। सनातन तत्त्व का अन्य कर्ता नहीं होता।

गीता : सोलहवां अध्याय

. दैवासुर संपदा

निर्भयता, अंतःकरण की शुद्धि, स्वरूपज्ञान में दृढ़ स्थिति, दान, इंद्रिय–दमन, यज्ञ (सत्कर्म), स्वाध्याय, तप (कष्ट सहन), सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, अपैशुन (निंदा न करना), प्राणियों पर दया, अलोलुपता, कोमलता, बुरे कर्मों से लज्जा, स्थिरता, तेज (सदाचार की गंभीरता), क्षमा, धैर्य, भीतर–बाहर पवित्रता, अद्रोह तथा निर्मानता दैवी संपदा के लक्षण हैं।

दंभ, घमंड, अभिमान, क्रोध, कठोरता तथा अज्ञान आसुरी संपदा के लक्षण हैं। दैवी संपदा मोक्ष में कारण है और आसुरी संपदा बंधन का कारण है। मनुष्य दो प्रकार के हैं; एक दैवी–प्रकृति वाले और दूसरे आसुरी–प्रकृति वाले। दैवी संपदा तो ऊपर विस्तार से बताया गया है और आसुरी संपदा संक्षेप में; इसलिए अब आसुरी संपदा विस्तार से कथन करना है।

आसुरी प्रकृति वाले यह नहीं समझते कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। उनमें न भीतर–बाहर की पवित्रता होती है न सदाचार और न सत्य भाषण। वे कहते हैं कि जगत आश्रय–रहित और असत्य है। बिना ईश्वर के केवल स्त्री–पुरुष के संयोग से सृष्टि होती है। जीवन का लक्ष्य केवल काम–भोग है। इसके अलावा कुछ नहीं। ऐसे नष्ट–बुद्धि के लोग अन्य को

पद-भ्रष्ट करने वाले ही होते हैं। ऐसे लोग दंभ, मान और मद से भरे हुए स्वयं पतित होते हैं और दूसरों को वही सीख देकर उन्हें भी भ्रष्ट करते हैं। जो भोगों में ही अपने को झोंक देने वाले हैं वे मरते दम तक चिंताओं में जलते रहते हैं। वे यही समझते हैं कि इंद्रिय-भोग ही परम सुख है। ऐसे लोग भोग-प्रतिष्ठा की अनेक आशाओं के फांस में बंधे हुए और काम-क्रोध में डूबे हुए कामनाओं की पूर्ति के लिए अन्यायपूर्वक धन-संग्रह करने की चेष्टा करते हैं। वे सोचते हैं कि मैंने यह प्राप्त कर लिया है और आगे यह प्राप्त करूंगा। मेरे पास इतना धन है और आगे इतना अधिक हो जायगा। मैंने अपने अमुक विरोधी को रगड़ दिया है और आगे अमुक-अमुक को नीचा दिखा दूंगा या मार दूंगा। मैं मालिक हूं, ऐश्वर्य का भोगने वाला हूं। मैं सब तरफ सफल हूं, बलवान और सुखी हूं। मैं बड़ा धनी हूं, बड़ा कुटुंब वाला हूं। मेरे समान दूसरा कौन है ? मैं यज्ञ करूंगा, दान दूंगा, आनंद करूंगा। इस प्रकार की मन:कल्पनाओं में डूबे हुए लोग अज्ञान से मोहित अनेक भ्रांतियों में पड़े, मोहजाल में उलझे, काम-भोग में आसक्त लोग गंदे नरक में गिरते हैं– *पतन्ति नरके अशुचौ* (,)।

अपने आप को महान मानने वाले, धन और मान-मद से भरे लोग दिखावा के लिए यज्ञ करते-सत्कर्म करते हैं। वे लोग बल का घमंड करने वाले अहंकारी हैं, काम-क्रोध में डूबे हैं, दूसरों की निंदा में रस लेते हैं। वे लोग अपने और दूसरों की देहों में स्थित मुझ परमात्मा से द्वेष करने वाले हैं। ऐसे द्वेष करने वाले पापियों को मैं बारंबार आसुरी योनियों में डालता हूं। हे अर्जुन! वे मुझे न पाकर घोर आसुरी योनियों में जाते हैं और नीच गति में पहुंचते हैं। काम, क्रोध और लोभ, ये तीन नरक के द्वार हैं, अतएव इन्हें त्याग देना चाहिए। जो इन तीनों से सर्वथा छूट जाता है, वह परम गति प्राप्त करता है। जो मनुष्य शास्त्रों के विधान को छोड़कर मनमती आचरण करता है, वह न सिद्धि पाता है न सुख पाता है और न परम गति पाता है। इसलिए शास्त्रों के अनुसार आचरण करना चाहिए (अध्याय)।

मीमांसा

सद्‌गुण और दुर्गुण दैवी और आसुरी संपदाएं हैं। इनकी छोटी या बड़ी सूची बनायी जा सकती है। आसुरी संपदा में यह भी बात आयी है कि वे यह मानते हैं कि सृष्टि केवल स्त्री-पुरुष संयोग से होती है, जगत का कोई ईश्वर नहीं है। यह प्रसंग देहाभिमानियों का ही है। कपिल और जैमिनि जगत का कोई ईश्वर नहीं मानते। कपिल के अनुसार प्रकृति-पुरुष, अर्थात जड़-चेतन से सृष्टि

चलती है और जैमिनि के अनुसार सृष्टि अनादि-अनंत है और जड़-चेतन के गुण-धर्मों से चलती है। ये दोनों ऋषि तपःपूत हैं। कपिल तो परम सिद्ध हैं। पतंजलि भी कपिल का अनुसरण करते हैं। गौतम और कणाद भी ईश्वर के पक्षपाती नहीं दिखते। अतएव ईश्वर को मानना या न मानना महत्त्व नहीं रखता। दुर्गुणों एवं विषय-लंपटता को छोड़कर आत्मसंयमी होना शांति का रास्ता है और यही महत्त्वपूर्ण है।

आसुरी संपदा के वर्णन में घमंडियों तथा लंपटों का खाका खींचा गया है; और लेखक की अपनी भावुक आदत के अनुसार श्रीकृष्ण के ईश्वरीय मुख से कहलाया गया है कि मैं ऐसे आसुर स्वभाव वालों को नरक में गिराता हूं। वस्तुतः लोग अपने दुष्कर्म से नीच गति में जाते हैं, श्रीकृष्ण महाराज किसी को क्यों नरक में गिरायेंगे ?

कहा गया है कि दूसरों से द्वेष करने वाले सबके शरीर में बसने वाले मुझसे द्वेष करते हैं–*माम् प्रद्विषन्तः* (,)। मैं ही सबके शरीर में बसता हूं; अतएव किसी से कोई द्वेष करे तो मानो मुझसे द्वेष करता है। इस सिद्धांत से तो द्वेष करने वाला भी तो कृष्ण ही हुआ। जब कृष्ण ही सब शरीरों में हैं, तब वे ही भला-बुरा सब कुछ करते हैं। वस्तुतः *'माम्'*–मुझको, आत्मा ही है और आत्मा ही परमात्मा है। जो किसी आत्मा को कष्ट देता है वह परमात्मा को कष्ट देता है।

अंत में शास्त्रानुसार आचरण न करके मनमानी करने वालों को फटकारा गया है और शास्त्रानुसार आचरण करने की राय दी गयी है, यह ठीक है; परंतु शास्त्र पर भी विचार करना आवश्यक है। कितने शास्त्र-वचन हैं जिसमें मनुष्यों में ऊंच-नीच की खाई बनाने का जबरदस्त आदेश है और निरीह प्राणियों की ईश्वर और देवताओं के नाम पर हत्या करने का आदेश है; अतएव इन-जैसे शास्त्रादेश का सर्वथा त्याग करना परम आवश्यक है।

गीता : सत्तरहवां अध्याय

. श्रद्धा, यज्ञ, दान, तप, भोजन आदि में त्रिगुण विवेचन

अर्जुन ने पूछा–हे कृष्ण! जो लोग शास्त्रविधि त्यागकर श्रद्धापूर्वक देवों का पूजन करते हैं उनके तीनों गुणों–राजसी, सात्विकी तथा तामसी की श्रेणी कौन सी होती है ?

श्रीकृष्ण ने कहा–मनुष्यों की स्वभाव से ही तीन प्रकार की श्रद्धा होती है– सात्विकी, राजसी और तामसी। हर मनुष्य की श्रद्धा उसके मन के अनुसार होती है। मनुष्य श्रद्धामय है। इसलिए हर मनुष्य अपनी श्रद्धा के अनुरूप होता है। सात्विक मनुष्य देव-पूजन करते हैं, राजसी मनुष्य यक्ष-राक्षस पूजते हैं और तामसी मनुष्य भूत-प्रेत पूजते हैं। जो मनुष्य शास्त्र-विधि से रहित घोर तप करते हैं और अहंकार तथा काम, राग तथा बल के अभिमान से युक्त हैं, वे शरीर को तथा शरीर में स्थित मुझ परमात्मा को दुख देते हैं। ऐसे अज्ञानी लोग असुर-स्वभाव वाले हैं। मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार ही भोजन पसंद करता है। वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी उनके तीन प्रकार के होते हैं।

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख, प्रीति बढ़ाने वाले रसयुक्त, चिकने और जिसका सार शरीर में अधिक समय तक स्थिर रहने वाला होता है, ऐसे स्वभाव से मन को प्रिय लगने वाले भोजन सात्विक मनुष्यों को प्रिय होते हैं।

कड़वे, खट्टे, नमकीन, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक तथा दुख, चिंता तथा व्याधि उत्पन्न करने वाले भोजन राजसी मनुष्यों को प्रिय होते हैं।

अधपका, रसरहित, दुर्गंधयुत, बासी, अपवित्र और जूठा भोजन तामसी मनुष्यों को प्रिय होते हैं।

फल की कामना त्यागकर शास्त्र-विधि से किया गया यज्ञ सात्विक है। फल की इच्छा रखकर तथा दंभपूर्वक किया गया यज्ञ राजसी है; और शास्त्रविधि से रहित, अन्नदान तथा दक्षिणा-रहित, बिना श्रद्धा से किया गया यज्ञ तामसी है।

देवता, ब्राह्मण, गुरु तथा ज्ञानियों का पूजन और पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा शरीर संबंधी तप है।

उद्वेग-शून्य, प्रिय, हितकर, सत्य भाषण तथा स्वाध्याय वाणी का तप है।

मन की प्रसन्नता, शांति, मौन, मन का संयम, अंतःकरण की शुद्धि मन का तप है।

उपर्युक्त तीनों तप यदि निष्काम भाव से श्रद्धापूर्वक किया जाता है तो यह सात्विक है। यदि मान, सत्कार तथा पूजा पाने के लिए या अन्य स्वार्थ-सिद्धि के लिए दंभ से किया जाता है, तो राजस तप है। यदि मूढ़तापूर्वक, अपने को पीड़ा देकर या दूसरे का अनिष्ट करने के लिए किया जाता है, तो यह तामस तप है।

दान भी तीन प्रकार का होता है। देश, काल और पात्र के अनुसार केवल कर्तव्य दृष्टि से तथा बदले में कुछ पाने की इच्छा न रखकर दिया गया दान

सात्विक है। क्लेशपूर्वक, बदले में कुछ पाने की इच्छा रखकर एवं फल की कामना से किया गया दान राजस है। बिना सत्कार अपितु तिरस्कारपूर्वक और अयोग्य देश, काल और पात्र को दिया गया दान तामस है।

श्रीकृष्ण ने आगे कहा–*ॐ तत् सत्* ये तीन ब्रह्म के नाम हैं। इन्हीं से पहले ब्राह्मण, वेद और यज्ञ निर्धारित किये गये। इसलिए यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएं सदैव ओम् नाम उच्चारण करके आरंभ होती हैं। मोक्ष की इच्छा रखने वाले फल पाने से निष्काम रह तत् कहकर ही यज्ञ, तप और दान करते हैं। सत् कहकर सत्यभाव एवं श्रेष्ठभाव भी प्रदर्शित किया जाता है। यज्ञ, तप, दान और उसके लिए किये गये कर्म सब सत् ही हैं। बिना श्रद्धा से किये गये दान, तप, यज्ञ न आज के लिए लाभदायक हैं और न आगे के लिए (अध्याय)।

मीमांसा

इस अध्याय में यज्ञ, दान, तप तथा भोजन में सत, रज और तम गुण के लक्षणों का वर्गीकरण किया गया है। शुरुआत ही में मनुष्य को श्रद्धामय कहा गया है, किंतु उसकी श्रद्धा की श्रेणियां भी त्रिगुणात्मक एवं भिन्न हैं। ये सारी बातें लेखक की बहुज्ञता प्रदर्शित करती हैं। जो पाठकों के लिए हितकर हैं।

अंत में ॐ तत् सत् ब्रह्म के नाम कहे गये हैं जो वैदिक परंपरा की बात है। वस्तुतः मनुष्य ही ज्ञान, विज्ञान और सारे कर्मों का स्रोत है। वही सबका निर्धारक और कल्पक है। सारे शब्द और नाम मनुष्यों द्वारा निर्धारित होते हैं। इसीलिए भारत में वैदिकों द्वारा ॐ तत् सत् ब्रह्म के नाम कहे गये। भारत के बाहर यहोवा, गॉड, अल्लाह, खुदा आदि नाम कहे गये। वस्तुतः मनुष्य ही सर्वोच्च ज्ञान-सत्ता है। वह अपनी महत्ता न समझकर अन्य देवी-देवताओं तथा ईश्वरों में उलझता है।

गीता : अठारहवां अध्याय

. आसक्ति–कामना त्यागकर कर्म करना आवश्यक

अर्जुन ने संन्यास और त्याग की सत्यता को जानना चाहा। श्रीकृष्ण महाराज ने कहा–पंडितजन काम्य कर्मों का त्याग कहते हैं और विचार-कुशल जन कर्मों के फल का त्याग कहते हैं। कुछ मनीषी कहते हैं कि कर्म मात्र दोष जनक होता है, इसलिए वे त्यागने योग्य हैं और कुछ विद्वान कहते हैं कि यज्ञ, दान, तप आदि त्यागने योग्य नहीं हैं।

त्याग के विषय में मेरा मत है कि वे तीन प्रकार के होते हैं–सातस, राजस और तामस। यज्ञ, दान और तप त्यागने योग्य नहीं हैं क्योंकि ये मनुष्य को पवित्र करते हैं। मेरा निश्चित उत्तम मत है कि यज्ञ, दान, तप और संपूर्ण कर्तव्य-कर्म आसक्ति और फल की आशा त्यागकर करना चाहिए। नियत कर्मों का त्याग करना तामस त्याग है। सारे कर्म दुखपूर्ण हैं ऐसा समझकर जो शारीरिक क्लेश के भय से कर्मों का त्याग करता है, उसका त्याग राजस है। इसका परिणाम अच्छा नहीं हो सकता। आसक्ति और फल का त्याग करके नियत कर्म करना सात्विक त्याग है।

जो संशय-रहित ज्ञानी है, वह अकुशल कर्म को द्वेषवश नहीं त्यागता है, किंतु दुखदायी होने से त्याग देता है और कुशल कर्म मोहवश नहीं करता है, अपितु कल्याणकारी समझकर करता है। इसलिए वह अकुशल कर्म से द्वेष नहीं करता तथा कुशलकर्म में आसक्ति नहीं रखता। अतएव सत्य में लीन ज्ञानी सच्चा त्यागी है। देहधारी मनुष्य संपूर्ण कर्मों का त्याग नहीं कर सकता। इसलिए अनासक्तिपूर्वक कर्म करना ही उसका कर्तव्य है।

कर्म अच्छे, बुरे तथा मिश्रित तीन प्रकार के होते हैं। आसक्त जीव को इनके फल भोगने पड़ते हैं; किंतु जो कर्म-फल का त्यागी है, वह बंधन में नहीं पड़ता। सांख्यशास्त्र में कर्मों के करने में पांच आधार बताये गये हैं–कर्ता, अधिष्ठान, करण, चेष्टा और दैव। कर्ता जीव है, अधिष्ठान शरीर है, करण मन-इंद्रियां हैं, चेष्टा इच्छा है और दैव प्रारब्ध है। मनुष्य पाप या पुण्य जो कुछ करता है उनके आधार उपर्युक्त पांच हैं। अतएव जो मनुष्य केवल आत्मा को ही कर्मों का कर्ता समझता है, वह विवेकहीन है। इसलिए "जिसके हृदय में 'मैं कर्ता हूं' ऐसा अभिमान नहीं है और जिसकी बुद्धि कर्मों में लिपायमान नहीं होती है, वह सारे संसार के लोगों को मारकर भी मानो नहीं मारता है और वह उन कर्मों के बंधनों में नहीं बंधता" (अध्याय , -)।

मीमांसा

गीता-रचना-काल में कर्मों के विषय में विचारकों की अनेक धारणाएं थीं जो पहले से चली आ रही थीं। इसका वर्णन बौद्ध ग्रंथों में विस्तार से पाया

. **यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।**
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते गीता ,

जाता है। ऐसे भी विचारक थे जो पूरा निष्क्रिय रहना ही ज्ञान तथा धर्म समझते थे। गीता लेखक का विचार इसमें बहुत संतुलित है। वे कहते हैं कि बिना कर्म किये तो आदमी का चल ही नहीं सकता। शरीर-निर्वाह के लिए कुछ करना ही पड़ेगा। अतएव कल्याण का रास्ता यह है कि पाप का रास्ता छोड़ दे, केवल पुण्य कर्म करे, किंतु उसके फल में मोह न रखे, और आसक्ति त्यागकर कर्म करे।

गीताकार ने कहा कि कर्ता, अधिष्ठान, करण, चेष्टा और दैव कर्म करने में पांच कारण हैं, यह भी ठीक है; किंतु यह कहना कि जो केवल आत्मा को ही कर्ता मानता है, वह विवेकहीन है, यह उचित नहीं है। उदाहरणार्थ, एक मनुष्य किसी की हत्या करना चाहा। वह मोटरसाईकिल में पेट्रोल डाला, आंखों पर चश्मा चढ़ाया और हाथ में पिस्तौल लिया और जाकर उसको मारा, तो इसमें यह नहीं कहा जा सकता कि केवल वह मनुष्य हत्यारा नहीं है, अपितु पेट्रोल, मोटरसाईकिल, चश्मा और पिस्तौल भी हत्यारे हैं। वस्तुतः हत्यारा मारने वाला केवल मनुष्य है। यदि वह पकड़ा जायगा तो उसी को सजा मिलेगी, पेट्रोल, मोटरसाईकिल, चश्मा और पिस्तौल को सजा नहीं मिलेगी; क्योंकि ये जड़ हैं। अतएव अधिष्ठान, करण, चेष्टा और दैव सब जड़ हैं, कर्ता चेतन आत्मा है, वही केवल कर्ता और भोक्ता है। यह ठीक है कि वह स्वरूप से शुद्ध है, अकर्ता है, परंतु देहोपाधि से वही कर्ता है और वही फल-भोक्ता है। इसीलिए उसे कर्मों से ऊपर उठकर मोक्ष लेना है।

केवलम् आत्मानम् कर्तारम् पश्यति सः दुर्मतिः न पश्यति (,)। अर्थात "केवल आत्मा को कर्ता समझता है, वह विवेकहीन है, वह सच नहीं समझता है।" यह बात जमती नहीं है। देहोपाधि में कर्ता केवल आत्मा है ही। वस्तुतः ऊपर धांधलेबाजी करके ही आगे बात कही गयी है कि जो अपने को कर्ता नहीं मानता है और जिसकी बुद्धि कर्मों में लिप्त नहीं होती है, वह सारे संसार को मारकर भी न मारता है और न बंधता है।

विचारणीय बात है कि जिसके मन में अहंकार तथा कामना नहीं होगी, वह किसी को मारेगा क्यों ?

सन् ई. नवंबर महीने की बात है। गोरखपुर गीता वाटिका में कल्याण के संपादक सम्माननीय श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार से मेरी वार्ता हो रही थी। उन्होंने *'यस्य नाहंकृतो भावो'* श्लोक कहा। मैंने इस श्लोक के भाव पर टोका तो उन्होंने बड़ी विनम्रता से स्वीकारा कि जिसको अहंकार और कामना नहीं होगी, वह किसी को क्यों मारेगा ?

. ज्ञान, कर्म, मनुष्य, बुद्धि, धारणा तथा सुख तीन गुणों से व्याप्त है

जो मनुष्य सभी प्राणियों में समता बुद्धि रखकर सब में एकत्व देखता है, उसका सात्विक ज्ञान है; और जो सब में विषमता देखता है, उसका राजस ज्ञान है; परंतु जो शरीर में आसक्त तुच्छ बुद्धि वाला है वह तामसी है।

आसक्तिरहित, फल के मोह को त्यागकर, राग-द्वेष से मुक्त होकर नियत कर्म करना सात्विक कर्म है। जो अहंकार-कामनापूर्वक बहुत मेहनत से किया जाय वह राजस कर्म है। परिणाम, हानि, हिंसा का विचार न करके केवल मोह-वश कर्म किया जाता है वह तामस कर्म है।

वह सात्विक मनुष्य है जो आसक्ति तथा अहंकार से रहित है, धैर्यवान, उत्साही तथा सफलता-असफलता में निर्विकार रहकर शांत रहता है। वह राजस प्रकृति वाला है जो आसक्ति और कामनाओं में बंधा है, लोभी, हिंसक, मलिन मन वाला तथा हर्ष-शोक में डूबा है। वह तामसी प्रकृति वाला है जो असंतुलित, समझरहित, घमंडी, धूर्त, दूसरे की जीविका का नाशक, शोक करने वाला, आलसी और कर्तव्य कर्म में ढीलढाल है।

वह बुद्धि सात्विक है जिसमें प्रवृत्ति-निवृत्ति, कर्तव्य-अकर्तव्य, भय-अभय और बंधन-मोक्ष का यथार्थ बोध है। वह बुद्धि राजसी है जिसमें कर्तव्य-अकर्तव्य, धर्म-अधर्म का ज्ञान नहीं है। वह बुद्धि तामसी है जिसके द्वारा मनुष्य अधर्म को धर्म मान लेता है और सब में उलटा ही सोचता है।

वह धारणा सात्विक है जो एकनिष्ठ है और जिसके द्वारा मनुष्य योगाभ्यास करके मन, प्राण तथा इंद्रियों की क्रियाओं को स्ववश कर लेता है। वह धारणा राजसी है जिससे मनुष्य धर्म, काम, अर्थ में अत्यंत आसक्त और फलाकांक्षी होता है। वह धारणा तामसी है जिससे प्रभावित होकर मनुष्य दुष्ट-बुद्धि का अनुगमन करता है और आलस्य, भय, चिंता, दुख, उन्मत्तता में पड़ा रहता है।

हे अर्जुन! सुख के भी तीन प्रकार हैं। सेवा, स्वाध्याय, ध्यानादि अभ्यास में रमना और दुखों का अंत करना। ऐसा सुख त्याग की कठिनाई से आरंभ में विष सदृश लगता है और परिणाम में अमृत होता है, यह आत्म-शुद्धि का सात्विक सुख है। जो सुख इंद्रिय और विषयों के संयोग से होता है, वह पहले अमृत के समान लगता है और परिणाम में विष होता है। यह राजस सुख है। जो सुख भोग-काल और परिणाम में मोहित कर आलस्य-प्रमाद में लगाता है, वह तामस है। पृथ्वी में, आकाश में अथवा देवलोक में या कहीं भी ऐसा सत्व

अर्थात प्राणियों की देहें या पदार्थ नहीं हैं जो उक्त तीनों गुणों से रहित हों (अध्याय , -)।

. वर्ण–कर्म की स्वाभाविकता और अपनी जगह पर सबका कल्याण संभव

हे अर्जुन! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के कर्म उनके स्वभाव से निर्धारित होते हैं। मन का शमन, इंद्रियों का दमन, कष्ट–सहन रूप तप, अंतर–बाहर की पवित्रता, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक भाव यह मनुष्य के स्वभाव से उत्पन्न ब्राह्मण–कर्म है। दुष्ट–दमन रूप वीरता, उत्तम चरित्र रूप तेज, धैर्य, चतुरता, युद्धकाल में पीठ न दिखाना, दान देना, स्वामित्व की योग्यता अर्थात प्रजा–रक्षण के लिए शासन करने की योग्यता, यह मनुष्य के स्वभाव से उत्पन्न क्षत्रिय–कर्म है। खेती करने, गौपालन करने और व्यापार करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति वैश्य–कर्म है और स्वभाव से शिल्प और श्रम द्वारा समाज की सेवा करना शूद्र–कर्म है।

मनुष्य अपने स्वाभाविक कर्म करते हुए अनासक्ति के अभ्यास से परम शांति रूप मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। जिन मौलिक स्वभावों से मनुष्यों की अपने–अपने कर्मों में प्रवृत्ति है, उसी से अपने कर्तव्य कर्म करते हुए आध्यात्मिक साधना द्वारा मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। दूसरे के धर्म से अपना धर्म गुण–रहित भी हो, तो भी उसका ठीक से पालन करने से वह कल्याणकारी है। स्वभाव से नियत कर्म करते हुए मनुष्य मलिनता से लिप्त नहीं होता। इसलिए अपने स्वभाव से उत्पन्न कर्म दोषयुक्त भी हो तो उसे नहीं त्यागना चाहिए। जैसे अग्नि से कुछ धुआं होता ही है, वैसे सभी कर्म कुछ–न–कुछ दोष से युक्त होते ही हैं। जो सर्वत्र अनासक्त–बुद्धि वाला, इंद्रिय–मन पर विजयी, इच्छा–रहित तथा सभी तृष्णाओं का त्यागी है, वह परम निष्काम–पद को प्राप्त करता है (अध्याय , श्लोक -)।

मीमांसा

गीता लेखक यहां चारों वर्णों के वर्णन में ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म का वर्णन पुरानी रूढ़ि से नहीं करता है। पुरानी रूढ़ि के अनुसार पढ़ना–पढ़ाना, यज्ञ करना–यज्ञ कराना तथा दान देना और दान लेना–ये ब्राह्मणों के कर्म हैं। यहां पर गीताकार ने इसे बिलकुल अलग धर दिया है। उसने शम, दम, तप, शौच,

क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक भाव ब्रह्मकर्म बताया, और वह भी स्वभाव से उत्पन्न। जिनमें उपर्युक्त सद्‌गुण स्वाभाविक हों वह ब्राह्मण है। यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के गुण स्वभाव से उत्पन्न बताये गये हैं, ऊपर से थोपे हुए नहीं। एक विद्वान व्यक्ति का पुत्र मोटर-गैरेज में काम करना चाहता है, तो वह तुच्छ नहीं है।

जो जिस काम को करता हो वह देखने में सदोष लगे तो भी यदि उसमें उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है तो उसके लिए वही ठीक है। किसी जीव की हिंसा या परघात का काम नहीं होना चाहिए। जैनियों ने कृषि कार्य में हिंसा मान लिया तो वे प्रायः व्यापारी हो गये, परंतु कृषक का उद्देश्य हिंसा करना नहीं है। अपितु अन्न पैदा करना तथा उसकी रक्षा करना है। व्यापारी यदि जान-बूझकर ग्राहक को धोखा देता है तो वह हिंसक है। अध्यापन-कार्य से जूते बनाना सदोष दिख सकता है, परंतु जिसका काम जूता बनाना है वह उसे करते हुए कल्याण-साधना का काम कर सकता है। परम वंदनीय रविदास महाराज जूते बनाते हुए परम संत थे। गीताकार का यह वचन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि अग्नि के साथ धुआं होने के समान सारे कर्म कुछ-न-कुछ दोष मिश्रित होते ही हैं। चलते-फिरते तथा व्यवहार का काम करते हुए ना-मालूम कितने सूक्ष्म देहधारियों की क्षति हो जाती है, परंतु उसमें मनुष्य विवश है।

गीताकार का यह ज्वलंत वचन महत्त्वपूर्ण है कि मनुष्य निर्वाह के लिए जो कुछ भी करता हो उसे करते हुए वह अपने कल्याण के लिए साधना कर सकता है। विद्वान, शासक, व्यवसायी, शिल्पी तथा श्रमिक सब आत्मकल्याण के लिए साधना करने में स्वतंत्र और समर्थ हैं। गीताकार इस प्रसंग के अंत में यही कहते हैं कि जो व्यक्ति सर्वत्र अनासक्त-बुद्धि, मन-इंद्रियों पर विजयी, इच्छाजित तथा तृष्णा रहित है, वह वासना-त्याग त्याग के पथ पर चलकर परम शांति प्राप्त करता है।

. ब्रह्मभूत एवं आत्मलीनता की रहनी

श्रीकृष्ण महाराज कहते हैं—हे अर्जुन! ज्ञानयोग की परम निष्ठा के पथ पर चलकर आत्मलीनता की सिद्धि जैसे प्राप्त होती है वह यह है—जिसकी बुद्धि शुद्ध है, हलका भोजन करता है, पांचों विषयों का विलास त्याग देता है, एकांत सेवन करता है, धैर्य रखता है, इंद्रियों पर संयम रखता है, मन-वचन-शरीर को वश में रखता है, राग-द्वेष से परे रहता है, दृढ़ वैराग्य में स्थिर रहता है;

अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध तथा परिग्रह का त्याग रखता है, नित्य ध्यान-योग में डूबा रहता है, वह ममता-रहित शांतात्मा मनुष्य ब्रह्मलीन, आत्मलीन एवं स्वरूपलीन होता है (अध्याय , -)।

. श्रीकृष्ण–भक्ति पर जोर

गीताकार श्रीकृष्ण महाराज के मुख से कहलाता है–जो ब्रह्मभूत एवं आत्मलीन है, वह न शोक करता है और न किसी वस्तु की इच्छा करता है। वह सभी प्राणियों में समता का व्यवहार करता है और मेरी भक्ति प्राप्त करता है। मैं जैसा हूं, वह समझता है और मुझमें प्रवेश कर जाता है। वह अपना कर्तव्य कर्म करते हुए मेरी कृपा से अविनाशी परम पद प्राप्त करता है। इसलिए हे अर्जुन! तुम अपने सारे कर्म मुझे समर्पित करके मेरे परायण हो जाओ। मेरी कृपा से तुम सारी कठिनाइयों से पार हो जाओगे। यदि तुम अहंकारवश मेरी बातों पर ध्यान नहीं दोगे, तो विनष्ट हो जाओगे। जो तुम अहंकारवश यह कहते हो कि मैं युद्ध नहीं करूंगा, यह तुम्हारा विचार मिथ्या है; क्योंकि तुम्हारा स्वभाव तुम्हें युद्ध में बलपूर्वक लगा देगा। हे अर्जुन! तुम मोहवश जिस कर्म को नहीं करना चाहते हो, उसको तुम अपने स्वाभाविक कर्म से बंधे हुए परवश होकर करोगे। जैसे हिंडोले पर बैठे हुए मनुष्यों को हिंडोला-चालक घुमाता है, वैसे सभी प्राणियों के हृदय में बैठा हुआ ईश्वर उन्हें चलाता है। अतएव तुम उसी ईश्वर की शरण में जाओ। उसी की कृपा से तुम्हें परम शांति मिलेगी।

इस प्रकार गूढ़-से-गूढ़ ज्ञान मैंने तुमको बता दिया। अब तुम उस पर विचारकर जैसा उचित लगे वैसा करो। मेरा तुम्हारे प्रति बहुत प्रेम है, इसलिए मैं तुमसे पुनः कहता हूं। तुम मेरे में मन लगाओ, मेरा भक्त बनो, मेरी पूजा करो, मेरा प्रणाम करो, फिर तुम मुझे ही प्राप्त होओगे। यहां तक कि तुम सभी धर्मों को त्यागकर एक मेरी शरण में आ जाओ, मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूंगा, तुम शोक मत करो (अध्याय , श्लोक -)।

मीमांसा

कोई समर्थ पुरुष अपने समर्पित भक्त से ऐसा साधिकार वचन कह सकता है जिससे उसे शांति मिले। श्रीकृष्ण महाराज समर्थ पुरुष थे, यह भी ठीक है; किंतु यह सब कथन तो कृष्णभक्त की महिमा है। जब किसी को जगत का कर्ता सिद्ध कर दिया जाता है तब उसके मुंह से कुछ भी कहलवाया जा सकता है।

क्या कोई महापुरुष अपने को इतना भड़ेहर बनायेगा कि किसी से कहे कि तुम मेरे में मन लगाओ, मेरा भक्त बनो, मेरी पूजा करो आदि? श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष ऐसा कैसे कह सकते हैं? क्या अर्जुन इतने अपात्र थे कि उन पर ऐसा भद्दा जोर डालना पड़े? भक्ति बड़े काम की है, किंतु उसका अतिरेक मनुष्य को विक्षिप्त बना देता है।

ईश्वर सबके हृदय में बैठा हुआ सबको घुमा रहा है, तो जीवात्मा कुछ नहीं है। हृदय में बैठा एक ही द्रष्टा और प्रेरक है, उसे चाहे जीव कहो और चाहे ईश्वर। सबके हृदय का प्रेरक एक नहीं है, किंतु अलग-अलग हैं। इसीलिए सबकी विभिन्न प्रवृत्तियां हैं। सबके हृदय में बैठे हुए स्वतंत्र आत्माओं के ऊपर एक ईश्वर को सबका प्रेरक बताना मनुष्य को सत्य से भटका देना है। अतएव जीवात्माओं का प्रेरक कोई अलग ईश्वर नहीं है, अपितु सब जीवात्मा अपने-अपने कर्मों के स्वयं जिम्मेदार हैं। वे जो करेंगे वह भरेंगे। कोई ईश्वर किसी जीव के पाप को काटने वाला नहीं है। मनुष्य स्वयं पाप के पथ को छोड़कर उससे छूट सकता है। गुरु भी केवल रास्ता बताने वाला है, किसी का पाप नहीं काट सकता। मनुष्य गुरु, संत, महापुरुष तथा उनके सत्वचनों का आधार लेकर स्वयं अपना उद्धार कर सकता है। महापुरुषों की भक्ति तथा उनके प्रति आत्म-समर्पण आवश्यक है, परंतु उसकी भी एक मर्यादा है। अंततः महापुरुषों का आधार लेकर अपना उद्धार स्वयं करना पड़ेगा।

श्रीकृष्ण के ये वचन मार्के के हैं– *'प्रकृतिः त्वाम् नियोक्ष्यति'* (,) तथा *'स्वेन स्वभावजेन निबद्धः कर्मणा'* (,), अर्थात हे अर्जुन! तेरा लड़ाकू स्वभाव तुझे स्वयं युद्ध में लगा देगा। तू स्वाभाविक कर्मों से बंधा हुआ विवश होकर युद्ध करेगा। गोस्वामी जी भी कहते हैं– *"काल कर्म स्वभाव बरियाईं। आवहिं रात दिवस की नाईं।"* स्वभाव को जीतना वीरता का काम है।

. गीता सुनने का अधिकारी और उसकी महिमा

श्रीकृष्ण कहते हैं–जिसमें तप नहीं है, मेरी भक्ति नहीं है, सुनने की इच्छा नहीं है तथा मेरे में निर्दोष-दृष्टि नहीं है, उससे यह गीता नहीं कहना चाहिए। जो व्यक्ति मुझमें प्रेम रखकर यह गीता मेरे भक्तों को सुनायेगा, वह मुझे प्राप्त करेगा। न उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला होगा, न संसार में उसके समान मेरा कोई प्यारा होगा। जो व्यक्ति गीता-संवाद पढ़ेगा उसके द्वारा मानो मेरी पूजा होगी। जो मनुष्य दोषदृष्टि त्यागकर गीता को सुनेगा वह पापों से मुक्त होकर उत्तम लोक में निवास पायेगा।

हे अर्जुन! तुमने इस गीता शास्त्र को एकाग्रचित होकर सुना है, तो क्या तुम्हारा अज्ञानजनित मोह नष्ट हो गया है ? अर्जुन ने कहा–हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरे मन का मोह नष्ट हो गया, मैं स्मृतिमान हो गया। अब मैं संदेह-रहित होकर आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।

संजय ने धृतराष्ट्र से कहा–इस प्रकार मैंने श्रीकृष्ण और अर्जुन का रोमांचकारी संवाद सुना। श्रीवेदव्यास जी की कृपा से दिव्यदृष्टि पाकर मुझे यह सब सुनना-जानना सरल हुआ। मैं उक्त संवाद का स्मरण कर बारंबार हर्षित हो रहा हूं। मैं हरि के उस अद्भुत रूप का स्मरण करके आश्चर्यचकित और प्रसन्न हो रहा हूं। हे राजन! मैं अधिक क्या कहूं, जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण और गांडीवधारी अर्जुन हैं वहीं विजय, विभूति और नीति है, ऐसा मेरा मत है (अध्याय , श्लोक -)।

मीमांसा

गीता स्वतंत्र पुस्तक है। उसके लेखक ने उसे महाभारत में फिट किया है, इसलिए युद्ध का पुट दिया, अन्यथा गीता से युद्ध का संबंध नहीं है। गीता का इतना आध्यात्मिक अमृतमय उपदेश सुन लेने के बाद अर्जुन को युद्ध करने की आवश्यकता नहीं रहना चाहिए। वस्तुतः महाभारत युद्ध होने के ढाई हजार वर्ष बाद गीता लिखकर महाभारत में रखी गयी है। गीता के अंत में उसका माहात्म्य आया है, इससे भी इसको स्वतंत्र ग्रंथ समझना चाहिए।

पूरा युद्ध संजय द्वारा धृतराष्ट्र को सुनाने की बात सोचकर ही लेखक को वेदव्यास से असंभव दिव्यदृष्टि संजय को दिलाने की बात सोचना पड़ा। यह सब एक उपोद्घात है। लेखक ने पूरी गीता में पाठक के मन में श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व की कील ठोंकी है जिसने श्रीकृष्ण के यथार्थ मानव स्वरूप को ओझल कर दिया है। मिथ्या महिमा और श्रद्धातिरेक ने पूरे संसार के धार्मिक क्षेत्र में अज्ञान का अंधकार फैला दिया है जिससे यथार्थ ज्ञान छिप गया है। विवेकवान स्वयं विवेक से काम लें।

गीता समाप्त होने पर भीष्म पर्व का तैंतालीसवां अध्याय शुरू होता है। इसके आरंभ में ही यह प्रसिद्ध श्लोक आता है–

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता

अर्थात गीता का पठन-मनन कर्तव्य है, अन्य शास्त्रों का संग्रह करने का क्या प्रयोजन है ? क्योंकि यह स्वयं पद्मनाभ भगवान के मुख-कमल से निकली हुई है।

इसके आगे चार श्लोक और हैं। उनके भाव इस प्रकार हैं–गीता सब शास्त्रमयी है, श्रीकृष्ण सर्वदेवमय हैं, गंगा सब तीर्थमयी है और मनु (स्मृति) सर्ववेदमय है। गीता, गंगा, गायत्री और गोविंद–गकारमय इन चार नामों को धारण कर लेने पर जीव का पुनः जन्म नहीं होता। गीता में छह सौ बीस श्लोक श्रीकृष्ण ने कहा है, सत्तावन श्लोक अर्जुन, सड़सठ श्लोक संजय ने और एक श्लोक धृतराष्ट्र ने कहा है। यह गीता का मान बताया गया है। भारत रूपी अमृत का सर्वस्व सारतत्त्व गीता का मंथन करके उसका सार निकालकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मुख में डाल दिया–सुना दिया है।

गीताप्रेस के महाभारत में इस जगह टिप्पणी में बताया गया है कि उपर्युक्त पांच श्लोक कितनी ही प्रतियों में नहीं हैं और कितनी प्रतियों में हैं।

. युधिष्ठिर का भीष्म, द्रोण, कृप तथा शल्य से युद्ध के लिए आज्ञा मांगना

अर्जुन को गांडीव धनुष और बाण धारण किये हुए देखकर उनके अनुगामी हर्षित होकर शंख बजाने लगे। फिर भेरी, पेशी, क्रकच, नरसिंहे आदि बाजे बज उठे। फिर देवता, गंधर्व, पितर, सिद्ध, चारण और महर्षिगण इंद्र को आगे कर उस भीषण मारकाट को देखने के लिए आये।

इसके बाद युधिष्ठिर कवच खोलकर और अपने हथियार वहीं छोड़कर हाथ जोड़े हुए पैदल भीष्म पितामह की ओर चले। इसके बाद अन्य चार भाई तथा श्रीकृष्ण भी उनके पीछे पैदल चल पड़े।

अर्जुन ने कहा–राजन! हम लोगों को छोड़कर कैसे अकेले शत्रु सेना की ओर चल पड़े ? अन्य तीनों भाइयों ने भी इस बात को दोहराया। परंतु युधिष्ठिर कोई उत्तर न देकर चुपचाप चलते रहे। श्रीकृष्ण ने हंसते हुए चारों पांडवों से कहा कि युधिष्ठिर का अभिप्राय मुझे ज्ञात हो गया है। राजा युधिष्ठिर भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य गुरुजनों से आज्ञा लेकर युद्ध करेंगे। गुरुजनों की आज्ञा लिए बिना काम सफल नहीं होता है और प्रतिष्ठा भी नहीं मिलती है।

युधिष्ठिर को भाइयों तथा कृष्ण सहित भीष्म की तरफ जाते देखकर कहीं हाहाकार हो रहा था और कहीं चुप्पी थमी हुई थी। दुर्योधन के सैनिक आपस में इस प्रकार बातें कर रहे थे–युधिष्ठिर अपने कुल का जीता-जागता कलंक है। युधिष्ठिर युद्ध से डरकर भीष्म की शरण लेने आ रहा है। अर्जुन, भीम, नकुल तथा सहदेव जैसे सहायकों को पाकर भी युधिष्ठिर को भय कैसे हो गया ?

मालूम होता है कि यह क्षत्रिय कुल में उत्पन्न नहीं है। इसकी मानसिक शक्ति तुच्छ है। फिर वे सैनिक कौरवों की प्रशंसा करके अपने कपड़े हिलाने लगे। इस प्रकार कौरव सेना युधिष्ठिर को धिक्कार देकर चुप हो गयी।

सब लोग सोचने लगे कि युधिष्ठिर क्या कहेंगे और भीष्म क्या उत्तर देंगे ? युद्ध की प्रशंसा करने वाले अर्जुन, भीम और कृष्ण क्या कहेंगे ? दोनों सेनाओं में युधिष्ठिर के लिए महान संदेह उत्पन्न हो गया। आयुधों से सजी हुई शत्रु की सेना में घुसकर भाइयों से घिरे हुए युधिष्ठिर भीष्म के पास जा पहुंचे। युधिष्ठिर ने अपने दोनों हाथों से भीष्म के चरणों को दबाया और कहा–पितामह! मुझे आपके साथ युद्ध करना है, आप मुझे आशीर्वाद और आज्ञा देने की कृपा करें।

भीष्म ने कहा–भरतकुलनंदन! यदि तुम मेरे पास आज्ञा लेने न आये होते, तो मैं तुम्हें पराजित होने के लिए शाप दे देता। पुत्र! अब मैं प्रसन्न हूं और मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुम युद्ध करो और विजय पाओ। मनुष्य अर्थ का दास है और अर्थ किसी का दास नहीं है। मैं कौरवों द्वारा अर्थ से बंधा हूं। इसीलिए मैं तुम्हारे सामने नपुंसक की तरह बात करता हूं। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने धन के द्वारा मेरा भरण-पोषण किया है। इसलिए मैं उनके विरोध में युद्ध नहीं कर सकता। इसके अलावा तुम जो चाहते हो वह मुझसे मांग लो।

युधिष्ठिर ने कहा–आप कभी पराजित होने वाले नहीं हैं, फिर मैं आपको युद्ध में कैसे जीत सकूंगा ? आप मेरे हित की बात कहें। भीष्म ने इस प्रश्न का उत्तर आगे के लिए टाल दिया। इसके बाद युधिष्ठिर द्रोणाचार्य के रथ की तरफ चले। वहां पहुंचकर उन्होंने द्रोणाचार्य को प्रणाम कर उनकी परिक्रमा की और पूछा–गुरुवर! मैं किस प्रकार निरपराध होकर युद्ध करूं ?

द्रोणाचार्य ने कहा–यदि तुम आज मेरे पास न आते तो मैं तुम्हें पराजय के लिए शाप दे देता। मैं तुमसे प्रसन्न हूं। तुम शत्रुओं से युद्ध करो और उन पर विजयी होओ। वर्तमान परिस्थिति में मैं तुम्हारी तरफ से युद्ध नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त तुम जो कुछ मांगना चाहो मांग लो। मनुष्य धन का दास है और धन किसी का दास नहीं है। मैं धन द्वारा कौरवों से बंधा हूं। इसलिए मैं नपुंसक की तरह पूछता हूं कि तुम युद्ध के अलावा क्या चाहते हो ? मैं दुर्योधन के लिए युद्ध करूंगा, परंतु विजय तुम्हारी चाहूंगा। युधिष्ठिर ने कहा–आप मुझे आशीर्वाद देते रहें, युद्ध दुर्योधन की ओर से ही करें, कोई हर्ज नहीं है। द्रोणाचार्य ने कहा–राजन! जीत तुम्हारी ही होगी, क्योंकि तुम्हारे मंत्री श्रीकृष्ण हैं। एक बात, मैं जब तक युद्ध करूंगा तब तक तुम्हारी विजय नहीं हो सकती। तुम अपने भाइयों सहित ऐसा प्रयत्न करो कि शीघ्र ही मेरी मृत्यु हो जाय।

युधिष्ठिर ने कहा–गुरुवर! आप ही अपनी मृत्यु का उपाय बताइए। आप को नमस्कार करता हूं। द्रोणाचार्य ने कहा–जिस समय मैं हथियार छोड़कर और अचेत-सा होकर आमरण अनशन में बैठ जाऊं, तभी मुझे कोई मार सकता है। यदि मैं किसी विश्वसनीय मनुष्य से कोई अत्यंत अप्रिय संदेश सुन लूं तो मैं हथियार डालकर बैठ जाऊंगा।

इसके बाद युधिष्ठिर कृपाचार्य (दादा गुरु) के पास गये और परिक्रमा तथा प्रणाम के बाद कहा–गुरुदेव! मैं पाप-रहित होकर युद्ध द्वारा कैसे शत्रुओं को जीतूं? कृपाचार्य ने भी भीष्म तथा द्रोण की तरह कहा कि यदि तुम मेरे पास न आते तो मैं तुम्हें पराजित होने का शाप दे डालता। मैं कौरवों के हाथ अर्थ से बंधा हूं। मैं युद्ध उन्हीं की तरफ से करूंगा। इसके अतिरिक्त तुम क्या चाहते हो? युधिष्ठिर कुछ कहना चाहे, किंतु व्यथित होकर अचेत हो गये। वे कुछ भी बोल न सके। कृपाचार्य समझ गये कि युधिष्ठिर क्या कहना चाहते हैं। उन्होंने कहा–राजन! मैं अवध्य हूं, जाओ युद्ध करो। मैं प्रसन्न हूं। मैं नित्य उठकर तुम्हारी विजय की कामना करूंगा।

युधिष्ठिर कृपाचार्य से उपकृत होकर महाराज शल्य के पास गये और उनको प्रणाम तथा परिक्रमा कर अपने हित की बात कही–मैं पापरहित एवं निरपराध होकर आपसे कैसे युद्ध करूं? आप आशीर्वाद दें। शल्य ने कहा–यदि तुम मेरे पास न आये होते, तो मैं तुम्हें पराजय के लिए शाप दे डालता। तुम्हारे आने से मैं प्रसन्न हूं, तुम्हें आशीर्वाद देता हूं, तुम युद्ध करो और विजयी होओ। मैं तुम्हारी तरफ से युद्ध नहीं कर सकता। इसके अलावा जो चाहो मांगो। मैं अर्थ से कौरवों द्वारा बंधा हूं। मैं युद्ध उन्हीं की तरफ से करूंगा।

युधिष्ठिर ने कहा–मामाजी! जब युद्ध के लिए उद्योग चल रहा था, तब आपने मुझे वचन दिया था, वही बात आज मेरे लिए आवश्यक है। जब कर्ण का अर्जुन के साथ युद्ध हो, उस समय आपको कर्ण का उत्साह नष्ट करना चाहिए। मुझे विश्वास है कि दुर्योधन आप जैसे कुशल को कर्ण का सारथि चुनेगा। शल्य ने कहा–मैं ऐसा ही करूंगा।

इसके बाद युधिष्ठिर कौरव-सेना से निकल गये। इसी बीच श्रीकृष्ण कर्ण के पास पहुंच गये और उन्होंने पांडवों के हित के लिए उनसे कहा–मैंने सुना है कि तुम्हारा भीष्म के साथ द्वेष होने के कारण उनके जीते तक तुम युद्ध नहीं करोगे। ऐसी स्थिति में जब तक भीष्म मारे नहीं जाते हैं, तब तक हम लोगों के पक्ष में आ जाओ। जब भीष्म मारे जायं, तब यदि उचित समझना तो दुर्योधन के पक्ष में चले जाना। कर्ण ने कहा–केशव! आपको समझना चाहिए कि मैं

दुर्योधन का हित चाहने वाला हूं। उसके लिए मेरे प्राण निछावर हैं। इसलिए मैं उसका अप्रिय कभी नहीं कर सकता। कर्ण की उक्त बातें सुनकर श्रीकृष्ण अपना मुख लटकाये लौट आये। इसके बाद युधिष्ठिर ने सेना के बीच में कौरवों की तरफ मुख करके पुकारा कि जो मेरे पक्ष में आना चाहे, मैं उसका स्वागत करता हूं।

युधिष्ठिर की उक्त बात सुनकर धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु ने कहा–राजा युधिष्ठिर! यदि आप मुझे स्वीकार करें, तो मैं आपकी तरफ से कौरवों से युद्ध करूंगा। धृतराष्ट्र-पुत्र युयुत्सु की उक्त बातें सुनकर युधिष्ठिर ने उन्हें सहर्ष अपना लिया। युयुत्सु डंका पीटते हुए पांडव-पक्ष में जा मिले। युधिष्ठिर के बरताव की सब ने प्रशंसा की। इसके बाद युद्ध का डंका बज गया (अध्याय)।

मीमांसा

भीषण मारकाट देखने के लिए देवता, गंधर्व, पितर, चारण, सिद्ध, ऋषि तथा इंद्र का आना कवियों का काव्य है। सहृदय आदमी किसी मुरगी का गला कटते नहीं देखना चाहेगा, तब उक्त महाशय मनुष्यों का भीषण संहार देखने क्यों आयेंगे ?

युधिष्ठिर का भीष्म, द्रोण, कृप तथा शल्य जैसे गुरुजनों से विनम्रतापूर्वक मिलना उनकी भक्ति तथा राजनीतिक लाभ के लिए हितकर था। श्रीकृष्ण का कर्ण को घुमाने की चेष्टा करना उनकी गंभीरता का द्योतक नहीं है। अंततः इस कार्य में वे असफल भी हुए। युधिष्ठिर का कौरव-पक्ष के वीरों का आवाहन करना उनकी कुशलता है और युयुत्सु को उसके फल में पाकर वे इस कार्य में सफल भी हुए।

भीष्म, द्रोण, कृप और शल्य एक ही बात को दोहराते हैं कि धन का मनुष्य दास है, किंतु धन किसी का दास नहीं होता। हम कौरवों के धन से पलते हैं, इसलिए नपुंसक की तरह बात करते हैं। भीष्म कौरव-पांडव के पितामह थे। इन सबको पाले-पोषे थे। द्रोण को भी तो द्रुपद का आधा राज्य युद्ध में मिल ही गया था और उसके मिलने में कौरवों से अधिक पांडवों का हाथ था। शल्य तो मद्र-नरेश थे और पांडवों के सगे मामा थे। ये सब मिलकर दुर्योधन से कह सकते थे कि तुम शर्त के अनुसार पांडवों का राज्य लौटा दो, नहीं तो हम तुमसे अलग हो जायंगे। अतएव इन लोगों की नपुंसकता दुर्योधन का विरोध न करने में है। सार बात यह है कि ये सब ढुलमुल यकीन थे। एक विदुर ही दृढ़, निर्भय और सत्य के पक्षधर थे।

. आठ दिनों के यद्ध का संक्षिप्त विवरण

दोनों तरफ से युद्ध शुरू हो गया। कौरवों की तरफ से भीष्म और पांडवों की तरफ से भीम आगे आये। दोनों तरफ से सिंहनाद, किलकारियों के शब्द, क्रकच, नरसिंहे, भेरी, मृदंग, ढोल आदि बजने लगे। दोनों तरफ से घोर युद्ध शुरू हो गया। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध होने लगा। फिर लाखों सैनिकों का मर्यादा-शून्य युद्ध चलने लगा। न पुत्र पिता को पहचानता था, न पिता पुत्र को, न भाई भाई को, न भानजा मामा को, न मामा भानजा को, न मित्र मित्र को पहचानता था।

भीष्म के साथ अभिमन्यु का भयंकर युद्ध हुआ। शल्य ने विराट-पुत्र उत्तर कुमार को युद्ध में मार दिया। इसके बाद उसका भाई श्वेत कुपित होकर शल्य से युद्ध आरंभ किया। श्वेत ने युद्ध में बड़ा पराक्रम दिखाया, परंतु वह भी भीष्म द्वारा मारा गया।

श्वेत के मारे जाने पर पांडव तथा उनके पक्षधर योद्धा शोक में डूब गये। शिखंडी आदि वीर भय से कांपने लगे। उधर कौरव सेना में हर्ष फैल गया और नाच-गान होने लगा।

शंख ने शल्य के ऊपर धावा बोला। कौरव-सेना ने शल्य की रक्षा की। शल्य ने शंख के चारों घोड़ों को मार डाला। शंख भागकर अर्जुन के रथ पर चढ़कर अपना बचाव किया। इसके बाद भीष्म भयंकर युद्ध कर पांडव-सेना के छक्के छुड़ा दिये। भीष्म पांडव-सेना के एक-एक वीर का नाम ले-लेकर मारते थे। भीष्म की मार के भय से पांडवों ने अपनी सेना पीछे हटा ली। इस प्रकार प्रथम दिन का युद्ध समाप्त हुआ (अध्याय -)। प्रथम दिन के युद्ध में पांडव-पक्ष के दो वीर उत्तर कुमार और श्वेत मारे गये तथा पांडव-सेना भी काफी मारी गयी। इससे युधिष्ठिर चिंतित हो गये। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा कि भीष्म के बल के सामने हमारी सेना टिक न सकी। अकेले भीम लड़ते रहे, अर्जुन तो मध्यस्थ-जैसे निष्क्रिय रहे। आगे क्या होगा ? क्या हम दुर्योधन द्वारा पीट दिये जायंगे। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को सांत्वना दी और अगले दिन क्रौंचारूढ़ व्यूह की रचना की गयी। उधर कौरव-सेना ने भी व्यूह की रचना की और दोनों सेनाओं की तरफ से शंखध्वनि करके परस्पर युद्ध करने में भिड़ गये।

दूसरे दिन के युद्ध में भीष्म और अर्जुन–पितामह तथा पौत्र युद्ध में डट पड़े। भीष्म तथा उनके सहायकों ने अर्जुन पर बाण छोड़े, तो अर्जुन ने भीष्म, द्रोण, कृप, विकर्ण, शल्य तथा दुर्योधन पर बाणों की वर्षा कर दी। उधर

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न परस्पर भिड़ गये, जिनकी आपसी पुरानी जानी दुश्मनी थी। दोनों का घोर संग्राम चला। भीम का कलिंगों और निषादों से युद्ध चला। भीम ने शक्रदेव, भानुमान और केतुमान को जो कौरव के पक्षधर थे, मार गिराया। अभिमन्यु और अर्जुन ने आज युद्ध में भारी पराक्रम दिखाया और कौरव–सेना का संहार किया। इस प्रकार दूसरे दिन का युद्ध समाप्त हुआ (अध्याय –)।

तीसरे दिन कौरव–पांडवों ने अपना–अपना व्यूह रचकर युद्ध शुरू किया और दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ। पांडव–पक्ष के योद्धाओं ने भारी पराक्रम दिखाया। अतएव कौरव–सेना में भगदड़ मच गयी। दुर्योधन को भी मूर्च्छा हो गयी। वह मूर्च्छा से जग गया और अपनी भागती हुई सेना को लौटाया। सेना रुक गयी। दुर्योधन ने भीष्म से कहा—आपके तथा द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के रहते हुए मेरी पराजय होना, आपके लिए योग्य नहीं है। आप से पांडव अधिक बलवान नहीं हैं। निश्चय ही पांडव आपके कृपापात्र हैं। तभी तो मेरी सेना का वध होते देखकर आप निष्क्रिय हैं। यदि आपको पांडवों पर दया ही करनी थी, तो युद्ध के पहले ही आप यह बता देते कि मैं पांडुपुत्रों, धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि से युद्ध नहीं करूंगा। ऐसी स्थिति में मैं तथा कर्ण आपस में विचारकर निर्णय लेते। इस युद्ध की स्थिति में जो आप मेरा परित्याग करते हैं, उचित नहीं जान पड़ता।

भीष्म ने हंसते हुए तथा क्रोध से आंखे तरेरते हुए दुर्योधन से कहा—राजन! मैंने तुमसे अनेक बार यह बात बतायी है कि पांडवों को युद्ध में इंद्र भी नहीं जीत सकते। फिर भी मुझ बूढ़े से जो कुछ हो सकता है, मैं करूंगा। मैं आज अकेला ही पांडव–सेना को आगे बढ़ने से रोक दूंगा। भीष्म के ऐसा कहने पर कौरव उत्साहित होकर अपने शंख बजाने लगे।

भीष्म ने युद्ध में भारी पराक्रम दिखाया। उनके प्रहार से पांडव–सेना व्याकुल हो गयी। भीष्म के बाणों से श्रीकृष्ण भी कंपित हो गये। इसके बाद कृष्ण कुपित हो गये और अपना चक्र लेकर रथ से कूद पड़े और भीष्म को मारने दौड़े। अर्जुन ने दस कदम दौड़कर श्रीकृष्ण का पैर पकड़ा और ऐसा करने से उन्हें रोका और कहा कि आप रथ पर बैठकर अपना काम करें। आपकी आज्ञा पाकर मैं समस्त कौरवों का अंत कर दूंगा। श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर रथ पर जा बैठे और रथ हांकने लगे। इसके बाद अर्जुन ने भयंकर युद्ध किया। अर्जुन के प्रहार से कौरव–सेना को धूल चाटना पड़ा। इस प्रकार तीसरे दिन का युद्ध समाप्त हुआ (अध्याय –)।

चौथे दिन भीष्म और अर्जुन का घमासान युद्ध हुआ। अभिमन्यु ने भी युद्ध में प्रबल पराक्रम दिखाया और धृष्टद्युम्न ने शल्य के पुत्र को मार डाला। धृष्टद्युम्न और शल्य का युद्ध हुआ और भीम ने गज सेना का भयंकर संहार किया। भीम और भीष्म पौत्र-पितामह में घनघोर युद्ध चला तथा सात्यकि और भूरिश्रवा में भिड़ंत हुई। पांडव-पक्ष से भीम और घटोत्कच ने कौरव दल के छक्के छुड़ा दिये। इस प्रकार कौरवों की पराजय के साथ चौथे दिन का युद्ध समाप्त हुआ (अध्याय -)।

इसके आगे पैंसठ से अड़सठ चार अध्यायों तथा एकसठ ( ) श्लोकों में श्रीकृष्ण की नारायण रूप में तथा अर्जुन की नर रूप में महिमा का बखान है। कृष्ण भक्तों का हस्तक्षेप महाभारत में व्याप्त ही है। उसी के फल में अतिशयोक्तियां हैं (अध्याय -)।

पांचवें दिन दोनों सेनाओं ने व्यूह रचकर युद्ध शुरू किया। भीष्म और भीम में घमासान युद्ध चला। भीष्म से अर्जुन का भी घमासान युद्ध हुआ। दोनों सेनाओं में परस्पर घोर युद्ध मच गया। चारों तरफ मनुष्यों तथा हाथी-घोड़ों की लाशें बिछ गयीं। विराट और भीष्म का, अश्वत्थामा और अर्जुन का, दुर्योधन और भीम का, तथा अभिमन्यु और लक्ष्मण का, सात्यकि और भूरिश्रवा का घोर युद्ध चला। कौरव-पक्षी भूरिश्रवा के हाथों पांडव-पक्षी सात्यकि के दस पुत्रों का संहार हुआ। इसके आगे अर्जुन ने कौरवों का घोर खून-खराबा किया। इस प्रकार पांचवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ (अध्याय -

छठें दिन का युद्ध आरंभ हुआ। दोनों पक्षों की सेनाएं डट पड़ीं। धृतराष्ट्र अपनी सेना कटते सुनकर चिंतित हो गये। उन्होंने कहा कि विदुर ने बारंबार सत्य कहा था, परंतु मेरे मूर्ख पुत्र नहीं माने। धृतराष्ट्र भाग्यवादी एवं नियतिवादी थे। उन्होंने कहा कि मालूम होता है कि ऐसा होना ही था, तभी ऐसी विपरीत बुद्धि हुई।

भीम तथा धृष्टद्युम्न पांडव-पक्ष से तथा द्रोणाचार्य कौरव-पक्ष से घोर युद्ध में उतर आये। भीम ने दुर्योधन को पराजित कर दिया। अभिमन्यु और द्रौपदी-पुत्रों ने कौरवों से घोर युद्ध किया, और छठें दिन का युद्ध समाप्त हुआ (अध्याय -)।

सातवें दिन के युद्ध के आरंभ में दुर्योधन भीम के बाणों से व्यथित होने के बाद भीष्म के पास बोले—दादा जी! पांडव-योद्धा हमारी सेना को मारकर चले जाते हैं। भीष्म ने दुर्योधन को भयभीत देखकर उसे सांत्वना दी और स्वयं युद्ध

के लिए प्रस्थान किया। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। श्रीकृष्ण और अर्जुन से भयभीत होकर कौरव-सेना में भगदड़ मच गयी।

विराट और द्रोणाचार्य का घोर युद्ध हुआ। विराट का पुत्र शंख मारा गया। शिखंडी और अश्वत्थामा में भिड़ंत हो गयी। सात्यकि ने अलंबुष को पराजित कर दिया। धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन को पछाड़ दिया। भीम और कृतवर्मा का घमासान युद्ध हुआ। अवंती के राजकुमार विंद और अनुविंद अर्जुन पुत्र इरावान से भिड़ गये। परंतु इरावान द्वारा विंद-अनुविंद पराजित हो गये। प्राग्ज्योतिषपुर के नरेश भगदत्त ने घटोत्कच को युद्ध में व्यथित कर दिया। मद्रनरेश शल्य ने अपने सगे भांजे नकुल और सहदेव से युद्ध किया। माद्री-पुत्र सहदेव ने अपने सगे मामा मद्रराज शल्य पर बाण चला दिया और वे बेहोश हो गये। कौरवों में निराशा छा गयी कि अब शल्य बच नहीं सकते। इधर माद्री-पुत्र मामा को मारकर प्रसन्नता में शंख बजाने लगे। नकुल-सहदेव दोनों हर्षित होकर कौरव सेना को खदेड़ने लगे।

युधिष्ठिर और श्रुतायु में घोर युद्ध हुआ। अंत में युधिष्ठिर से मार खाकर श्रुतायु भाग निकला। इससे दुर्योधन की सेना भयभीत होकर भागने लगी। उधर वृष्णिवंशी चेकितान ने कृपाचार्य पर धावा बोल दिया। अंततः दोनों परस्पर की मार से अचेत हो गये। भूरिश्रवा से धृष्टकेतु तथा अभिमन्यु से चित्रसेन पराजित हुए। अर्जुन ने सुशर्मा आदि को ललकारा। अर्जुन ने घोर युद्ध किया। पांडवों ने मिलकर भीष्म पर आक्रमण किया। भीष्म ने भारी रणकौशल दिखाया। भीष्म ने शिखंडी का धनुष काट दिया। युधिष्ठिर ने शिखंडी को डांटा कि तुमने अपने पिता के सामने प्रतिज्ञा की थी कि मैं भीष्म को मारूंगा, परंतु इस संबंध में ढीलढाल दिखते हो। भीष्म अपने युद्ध से मेरी सेना का विनाश कर रहे हैं और तुम निकम्मे बने बैठो हो! अर्जुन कहीं युद्ध में फंसे हुए हैं और तुम शिथिल हो।

युधिष्ठिर की डांट को शिखंडी ने अपना अपमान नहीं माना, अपितु उसे अपने लिए आदेश माना। भीष्म के सामने तत्काल भीम ने रणकौशल दिखाया। भीष्म और युधिष्ठिर का घमासान युद्ध हुआ। धृष्टद्युम्न, सात्यकि और द्रोणाचार्य का युद्ध हुआ, और सातवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ (अध्याय –)।

आठवें दिन के युद्ध के लिए दोनों दलों में व्यूह-रचना हुई और आपस में घमासान युद्ध होने लगा। भीष्म ने अपना पराक्रम दिखाया। भीम ने धृतराष्ट्र के आठ पुत्रों को मार डाला। दुर्योधन ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि भीम को मार डालो। दुर्योधन ने भीष्म से कहा–भीम ने मेरे भाइयों तथा सेना का संहार कर डाला। हम पूरा प्रयत्न करते हुए हारे जा रहे हैं। आप मध्यस्थ बैने बैठे हैं

और हम लोगों की उपेक्षा करते हैं। मैं बड़े बुरे मार्ग पर चल पड़ा हूं। मेरे इस दुर्भाग्य पर ध्यान दीजिए।

भीष्म ने आंसू बहाते हुए कहा–दुर्योधन! मैंने, द्रोणाचार्य ने, विदुर ने तथा गांधारी ने तुम्हें उचित सलाह दी थी, परंतु तुमने उस पर ध्यान नहीं दिया। मैंने पहले ही अपना यह निश्चय बता दिया था कि मुझे और द्रोणाचार्य को युद्ध में नहीं लगाना चाहिए। क्योंकि हम कौरव-पांडव दोनों के प्रति समान स्नेह रखते हैं। मैं सत्य कहता हूं कि भीम युद्ध क्षेत्र में तुम्हारे भाइयों को जहां-जहां देख लेंगे, उन्हें मार डालेंगे। राजन! तुम दृढ़ होकर युद्ध के लिए अपना निश्चय बना लो, और स्वर्ग ही अपना अंतिम आश्रय बनाकर पांडवों के साथ युद्ध करो।

कौरव-पांडव-सेना का घमासान युद्ध हुआ और भयानक जनसंहार हुआ। अर्जुन के पुत्र इरावान से शकुनि के भाई मारे गये और राक्षस कुलोत्पन्न अलंबुष के द्वारा इरावान भी मार डाले गये। घटोत्कच और दुर्योधन का भयानक युद्ध हुआ। इसके बाद द्रोणाचार्य से घटोत्कच भिड़ गया। दुर्योधन और भीम आपस में भिड़ गये। अश्वत्थामा और राजा नील भिड़ गये। घटोत्कच की कुशलता से पराभूत होकर कौरव-सेना भाग खड़ी हुई।

दुर्योधन के अनुरोध और भीष्म की आज्ञा से भगदत्त ने पांडव-योद्धा घटोत्कच, भीम आदि से घोर युद्ध किया।

पुत्र इरावान के मारे जाने से अर्जुन बहुत दुखी हुए और विलाप करते हुए उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा–हे वासुदेव! महा ज्ञानी विदुर ने यह सब पहले ही देख लिया था। कौरव-पांडव के महा विनाश की संभावना देखकर विदुर ने पहले ही राजा धृतराष्ट्र को मना किया था। कौरवों ने मेरे वीरों को मारा और हमने उनके वीरों को मारा। धन के लिए यह पापपूर्ण काम किया जा रहा है। धिक्कार है उस धन को, जिसको लेकर जाति-भाइयों का विनाश किया जाता है। निर्धन रहकर मर जाना अच्छा है, परंतु धन के लिए जाति-भाइयों का वध कभी नहीं करना चाहिए। श्रीकृष्ण! हम लोग जाति-भाइयों को मारकर क्या प्राप्त कर लेंगे ? दुर्योधन के अपराध से और शकुनि तथा कर्ण की कुमंत्रणा से जाति-भाई मारे जा रहे हैं। युधिष्ठिर ने जो दुर्योधन से मांग की थी–आधा राज्य या पांच गांव, उसे मैं अब समझ पा रहा हूं। दुर्योधन ने पांच गांव भी नहीं दिये। आज रणभूमि में भाई, बंधु तथा सगे-मित्रों को मरते देखकर सर्वाधिक मैं अपनी निंदा कर रहा हूं। क्षत्रियों की इस जीविका पर धिक्कार है। जाति-भाइयों के साथ युद्ध करना मुझे अच्छा नहीं लगता, किंतु आपकी प्रेरणा है तो हांकिए

रथ को, जिससे मैं अपनी भुजाओं से सैन्यसागर को पार करूं (भीष्म पर्व, अध्याय , श्लोक –)।

इसके बाद घमासान युद्ध हुआ। भीम ने धृतराष्ट्र के नौ पुत्रों को मार डाला। अभिमन्यु और अंबष्ठ का घमासान हुआ। मरे, अधमरे, कटे, फटे, रक्त से लथपथ सैनिकों की दशा भयंकर थी। इसी के साथ आठवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ (अध्याय –)।

. नवें तथा दसवें दिन का युद्ध और भीष्म पितामह का घायल होकर पड़ जाना

दुर्योधन के योद्धा तथा सेनाओं का बराबर अधिक संहार होता जा रहा है। इसलिए वे चिंतित हैं। उन्होंने शकुनि, दु:शासन तथा कर्ण के साथ रात में गुप्त मंत्रणा की। उनकी मंत्रणा का विषय था कि युद्ध में पांडवों को कैसे जीता जाय। दुर्योधन ने उनके बीच कहा–द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, शल्य तथा भूरिश्रवा पांडवों को कभी बाधा नहीं पहुंचाते हैं। मैं नहीं जानता कि इसका कारण क्या है। पांडव स्वयं अवध्य रहकर हमारी सेना तथा अस्त्र-शस्त्र का क्षय करते जा रहे हैं। कर्ण! तुम युद्ध से मुख मोड़कर बैठे हो, इसलिए पांडव मुझे परास्त करते जा रहे हैं।

कर्ण ने कहा–नरेश! आप चिंता न करें। मैं आपका काम करूंगा; परंतु भीष्म युद्ध से हट जायं। यदि भीष्म हथियार डाल दें तो मैं सोमवंशियों के सहित पांडवों को भीष्म के देखते-देखते मार डालूंगा। भीष्म तो सदा ही पांडवों पर दया करते हैं, अत: इनके युद्ध में रहते आपकी विजय नहीं होगी। अतएव आप भीष्म के शिविर में जाकर तथा उन्हें मना-दना कर हथियार डाल देने के लिए राजी कर लें। भीष्म के हटते ही समझ लो कि पांडव मेरे द्वारा मार डाले गये।

दुर्योधन भीष्म के शिविर में गये और नेत्रों में आंसू भरकर हाथ जोड़े विनम्रता से बोले–हम आपका आश्रय लेकर देवता सहित इंद्र को भी जीत सकते हैं, फिर पांडवों को जीतना कौन बड़ी बात है। अतएव प्रभो! आपको मुझ पर कृपा करना चाहिए। आप पांडवों का संहार करें। आपने इस तरह पहले कहा भी है। यदि आप पांडवों पर दया-भाव अथवा मेरे दुर्भाग्यवश मेरे प्रति द्वेषभाव रखने के कारण पांडव की रक्षा करना चाहते हैं, तो आप कर्ण को ही युद्ध के लिए आज्ञा दे दीजिए। कर्ण पांडवों को जीत लेंगे। इतना कहकर दुर्योधन चुप हो गये।

भीष्म पितामह दुर्योधन के वाग्बाण से आहत होकर बहुत दुखी हुए, किंतु उन्होंने दुर्योधन को थोड़ा भी कटुवचन नहीं कहा। वे दुखी होकर चिंतामग्न हो गये और लंबी सांस खींचते रहे। कुछ ठहरकर उन्होंने दुर्योधन से कहा–बेटा, अपने वाग्बाणों से मुझे क्यों छेदते हो ? मैं यथाशक्ति युद्ध में लगा हूं। तुम्हारे हितकार्य में मैं अपने प्राण देने के लिए तैयार हूं। परंतु तुम्हें याद होना चाहिए कि अर्जुन ने इंद्र को भी परास्त कर अकेला खांडववन को दग्ध किया था। यह उनकी अजेयता का प्रमाण है। याद करो, गंधर्व लोग तुम्हें पकड़ ले गये। उस समय अर्जुन ने ही तुम्हें छुड़ाया था। उस समय तुम्हारे वीर भाई तथा कर्ण युद्ध से भाग खड़े हुए थे। यह अर्जुन की अजेयता का प्रमाण है। विराटनगर में अकेले अर्जुन हम सबको परास्त कर दिये थे। क्या वे दिन भूल गये ? अर्जुन ने हमें परास्त कर हम लोगों के वस्त्र छीन लिए थे। गोग्रह के समय अर्जुन ने अश्वत्थामा और कृपाचार्य को भी परास्त कर दिया था। वीरता के बड़े अभिमानी कर्ण के भी वस्त्र अर्जुन ने छीनकर उत्तरा को दिये थे। अत्यंत वीर निवात कवचों को अर्जुन ने परास्त किया था, क्या वह सब भूल गया ? अनेक ज्ञानियों ने तुम्हें अनेक बार समझाया था, लेकिन तुम उचित–अनुचित समझते ही नहीं हो। जैसे मरणासन्न व्यक्ति को हरे–भरे वृक्ष भी सुनहरे रंग के दिखते हैं, वैसे तुम सब कुछ उलटा देखते हो। तुमने ही पांडवों तथा सृंजयों के साथ वैर ठाना है। इसलिए तुम्हीं युद्ध करो। तुम स्वयं अपनी वीरता का परिचय दो, हम देखेंगे। मैं शिखंडी के अलावा सबको मारूंगा या स्वयं मारा जाऊंगा। अब तुम जाकर सुखपूर्वक सो जाओ। मैं कल पांडवों से घोर युद्ध करूंगा।

भीष्म की उक्त बातें सुनकर दुर्योधन उनका प्रणाम करके अपने शिविर में चले गये। रात में दुर्योधन का रंग–ढंग देखकर भीष्म ने समझ लिया कि दुर्योधन अब मुझे युद्ध से हटाना चाहता है। भीष्म को बड़ा दुख हुआ। उन्होंने परवशता की निंदा की और अर्जुन के साथ युद्ध करने का निर्णय लिया। इधर दुर्योधन ने दु:शासन आदि योद्धाओं को भीष्म की रक्षा में तैनात किया।

अगले नवें दिन प्रात:काल ही दोनों सेनाएं युद्ध में डट पड़ीं। दोनों में घमासान युद्ध शुरू हुआ। अभिमन्यु के द्वारा परास्त होकर कौरव–सेना में भगदड़ मच गयी। अर्जुन का भीष्म के साथ, सात्यकि का कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा के साथ युद्ध चलता रहा। भीम ने गज सेना का भयंकर संहार किया। दोनों सेनाओं में इतना भयंकर युद्ध हुआ कि चारों तरफ रक्त–मांस का सैलाब हो गया। अर्जुन ने त्रिगर्तों को हराया, अभिमन्यु ने चित्रसेन को, द्रोण ने द्रुपद को और भीम ने बाह्लीक को हराया। सात्यकि और भीष्म का युद्ध चलता

रहा। युधिष्ठिर तथा नकुल–सहदेव ने शकुनि की घुड़सवार सेना को पराजित किया।

अंततः भीष्म ने इतना घोर युद्ध किया कि श्रीकृष्ण और अर्जुन घायल हो गये और पांडव–सेना भाग खड़ी हुई। यह स्थिति देखकर आज श्रीकृष्ण का पुनः भीष्म पर क्रोध भभक पड़ा और वे रथ छोड़कर भीष्म को चक्के से मारने दौड़े। परंतु अर्जुन ने दौड़कर उन्हें अपनी बाहों में समेट लिया और ऐसा करने से रोका और कहा कि आप अपनी प्रतिज्ञा की याद कीजिए। आपने युद्ध में शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की है। मैं इन सबको मारूंगा। अर्जुन की उक्त बातें सुनकर श्रीकृष्ण आश्वस्त होकर रथ पर आ गये और रथ हांकने लगे। इस प्रकार नवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ (अध्याय –)।

भीष्म की मार से पांडव–सेना ने अपने हथियार डाल दिये। युधिष्ठिर चिंतित हो गये। रात में वृष्णिवंशी, सृंजय और पांडव विचारकर इस परिणाम पर पहुंचे कि भीष्म के जीवित रहते हमारी विजय नहीं हो सकती; अतएव युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा–भीष्म को युद्धस्थल में देखकर मैं शोक में डूबा जा रहा हूं। अब मैं वन को चला जाऊंगा। मुझे युद्ध अच्छा नहीं लग रहा है। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को सांत्वना दी और कहा यदि अर्जुन भीष्म को मारना नहीं चाहते हैं, तो मैं आपकी आज्ञा पाकर कौरव सहित भीष्म को मार डालूंगा। यदि भीष्म के मारे जाने में ही आपको विजय दिखायी देती है, तो मैं भीष्म को मार दूंगा।

युधिष्ठिर ने कहा–कृष्ण! आपका बल पाकर मैं इंद्र को भी जीत सकता हूं, फिर भीष्म में क्या रखा है? मैं अपनी गुरुता का प्रभाव डालकर आपको असत्यवादी नहीं सिद्ध कर सकता। भीष्म से पहले शर्त हो चुकी है। उन्होंने कहा था–मैं युद्ध में तुम्हारे हित के लिए सलाह दे सकता हूं, परंतु तुम्हारी ओर से युद्ध नहीं करूंगा। युद्ध मैं केवल दुर्योधन के लिए करूंगा। भीष्म मुझे सलाह और विजय दोनों देंगे। हम उनके पास चलें। बालपन में जब हम अपने पिता को खो चुके थे, तब भीष्म ने ही हमारा पालन–पोषण किया था। वे मेरे पिता के पिता हैं, तो भी मैं उन बूढ़े पितामह को मारना चाहता हूं। क्षात्रवृत्ति को धिक्कार है!

अंततः रात ही में श्रीकृष्ण सहित पांडव भीष्म के शिविर में गये। सभी लोग अस्त्र–शस्त्र छोड़कर भीष्म के पास पहुंचकर उनको प्रणाम किये। भीष्म ने सबका प्रेम से आदर किया। भीष्म ने पांडवों से कहा–पुत्रो! जो मांगना हो मांग लो। मैं तुम्हारी तरफ से युद्ध नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त जो चाहो

मांग लो। युधिष्ठिर ने कहा–मेरी विजय कैसे हो और मुझे राज्य कैसे मिले ? आपके सामने हम युद्ध में कैसे टिक सकते हैं ? भीष्म ने कहा–तुम मुझे मार दो, मैं शिखंडी पर प्रहार नहीं कर सकता, अतएव उसे आगे करके मुझे मार दो।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पांडवों के बीच में कहा–मैं पितामह भीष्म को कैसे मारूंगा ? वे हमारे पिता के पिता हैं। मैं उनकी गोद में बैठकर उनका प्यार पाया हूं। श्रीकृष्ण ने कहा–अर्जुन! तुम क्षत्रिय हो। तुमने पहले प्रतिज्ञा की है कि मैं भीष्म पितामह को मारूंगा। अतः तुम भीष्म को मार गिराओ। उनको मारे बिना तुम्हारी विजय नहीं होगी। अर्जुन ने कहा–शिखंडी निश्चय ही भीष्म की मृत्यु का कारण होगा; क्योंकि उसको देखकर वे युद्ध बंद कर देते हैं।

दसवें दिन का युद्ध शुरू हुआ। दुर्योधन ने भीष्म को प्रोत्साहित किया। भीष्म द्वारा पांडवों के लाखों सैनिकों का संहार हुआ। अर्जुन ने शिखंडी को प्रोत्साहित किया, अतएव उसने भीष्म पर आक्रमण किया। दु:शासन ने अर्जुन से भिड़ंत की। भीम ने कौरव-सेना के दस महारथियों से युद्ध किया। अंततः शिखंडी को आगे करके अर्जुन ने भीष्मपितामह को बाणों से छेद डाला; क्योंकि शिखंडी को देखकर भीष्म ने अस्त्र-शस्त्र डाल दिये थे। भीष्म बाणों से बिंधकर रथ से गिर पड़े।

इसके बाद दोनों तरफ से युद्ध बंद हो गया। सभी राजा अपने-अपने कवच खोल तथा अस्त्र-शस्त्र डालकर भीष्म के दर्शन के लिए आने लगे। कौरव तथा पांडव दोनों भीष्म के पास आकर उन्हें प्रणाम कर खड़े हो गये। भीष्म ने कहा–राजाओ! मेरा सिर लटक रहा है, अतः मुझे तकिया दें। अर्जुन ने बाण मारकर भीष्म का सिर ऊपर उठा दिया। भीष्म को प्यास लगी। उन्होंने अर्जुन से पानी मांगा, तो अर्जुन ने पृथ्वी में ऐसा बाण मारा कि उसमें से पानी की पिचकारी निकलकर भीष्म के मुख में गयी और उसके द्वारा उन्होंने प्यास बुझाई। भीष्म ने दुर्योधन को युधिष्ठिर से संधि करने की राय दी और वेदना से पीड़ित हो मौन हो गये। इसके बाद वहां उपस्थित सभी राजा अपने-अपने निवास-स्थान चले गये।

भीष्म की उक्त स्थिति सुनकर कर्ण आये। भीष्म के नेत्र बंद थे। कर्ण की आंखों से आंसू छलक आये और उन्होंने भाव-विह्वल होकर कहा–पितामह। मैं वही राधा-पुत्र कर्ण हूं जो सदैव आपकी आंखों में गड़ता रहा और जिसे आप सदैव द्वेष दृष्टि से देखते थे। भीष्म ने आंखें खोलीं और एक हाथ से कर्ण को खींचकर प्यार भरा आलिंगन किया और वहां के पहरेदारों को दूर हटाकर इस प्रकार कहा–प्यारे कर्ण! तुम सदा मुझसे लाग-डांट एवं स्पर्धा करते रहे। तुम

अच्छा किये जो मेरे पास आये। बेटा, तुम राधा के नहीं, कुंती के पुत्र हो। यह बात वेदव्यास भी जानते हैं। मेरे मन में तुम्हारे लिए द्वेष नहीं है। मैंने तुम्हें समय-समय से डांटा है। इसका कारण है कि तुम दुर्योधन के उकसाने से पांडवों पर आक्षेप किया करते थे। मैं अपने कुल में फूट पड़ने के डर से तुम्हें कटु कहता रहा।

भीष्म ने आगे कहना जारी रखा–कर्ण! पांडव तुम्हारे सगे भाई हैं। यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो अपने भाइयों में मिल जाओ। मेरी मृत्यु के साथ यह वैर की आग बुझ जाय और बचे हुए राजा दुख-शोक रहित होकर निर्भय हो जायं।

कर्ण ने कहा–पितामह! आप जो कह रहे हैं वह सब मैं जानता हूं कि मैं राधा का नहीं, कुंती का पुत्र हूं। परंतु दुर्योधन का ऐश्वर्य भोगकर मैं उनको धोखा नहीं दे सकता। जैसे श्रीकृष्ण पांडवों के हित में समर्पित हैं, वैसे मैं दुर्योधन के हित में समर्पित हूं। आप मुझे युद्ध के लिए आज्ञा दीजिए। मैं पाडवों पर अवश्य विजय पाऊंगा। मैंने आज तक जो कुछ आपको कटु वचन कहा है, उसके लिए आप मुझे क्षमा कर दें।

भीष्म ने कहा–यदि यह वैर नहीं शांत हो सकता है तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुम स्वर्ग प्राप्ति के लिए युद्ध करो। तुम वीर तो हो ही, आचारवान भी हो। मैं कौरवों और पांडवों में शांति स्थापन के लिए दीर्घकाल से प्रयत्न करता रहा, परंतु उसमें सफल नहीं हुआ। इसके बाद कर्ण भीष्म से विदा होकर दुर्योधन के पास चले। इस प्रकार दसवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ (अध्याय –)।

मीमांसा

पांडवों का भीष्म के शिविर में जाकर उनकी मृत्यु का उपाय पूछना, यह अस्वाभाविक चित्रण कर लेखक पांडवों की पितामह-हत्या के दोष को घटाने का प्रयत्न करता है।

सद्गुरवे नमः

महाभारत मीमांसा

सातवां : द्रोण पर्व

. द्रोणाचार्य का प्रधान सेनापति पद पर अभिषेक और युद्ध

जनमेजय ने पूछा–ब्रह्मन वैशंपायन! भीष्म के मारे जाने पर धृतराष्ट्र ने क्या चेष्टा की ? वैशंपायन ने कहा–धृतराष्ट्र अशांत हो गये। उसी समय गवल्गण के पुत्र संजय आ गये। उनसे धृतराष्ट्र ने भीष्म के विषय में पूछा। संजय ने कहा–उस समय कौरवों ने कर्ण का स्मरण किया। सभी राजा कर्ण-कर्ण की पुकार करने लगे। भीष्म ने युद्ध के शुरू होने के पूर्व कर्ण को अर्ध रथी बता दिया था, यद्यपि वे दो रथियों के समान हैं। वस्तुतः वे अतिरथी हैं।

अब शरशय्या पर पड़े-पड़े भीष्म ने कर्ण से कहा–जैसे नदियों का आश्रय समुद्र, ज्योतिर्मय पदार्थों का आश्रय सूर्य, सत्य का आश्रय संत, बीजों का आश्रय उर्वर भूमि और प्राणियों की जीविका का आश्रय बारिश है, वैसे तुम भी अपने मित्रों का आश्रय बनो। कर्ण को पाकर कौरव-समाज प्रसन्न हुआ।

दुर्योधन ने कर्ण से कहा–भीष्म पितामह आयु, बल सब में बढ़े-चढ़े थे, इसलिए उनको प्रधान सेनापति चुना गया था। मल्लाह के बिना नाव तथा मार्गदर्शक के बिना यात्री भटक जाते हैं, वैसे सेनापति के बिना सेना क्षण भर ठहर नहीं सकती। कर्ण! बताओ, प्रधान सेनापति किसे बनाया जाय ?

कर्ण ने कहा–जितने राजा यहां आपके पक्ष में उपस्थित हैं, सब प्रधान सेनापति बनाने योग्य हैं। परंतु एक बार तो एक ही व्यक्ति प्रधान सेनापति बन सकता है। यदि किसी राजा को सेनापति बनाया जायगा, तो दूसरे राजा मन लगाकर युद्ध नहीं करेंगे; क्योंकि वे अप्रसन्न हो जायंगे। अतएव आयु तथा शस्त्रविद्या में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य हैं, उनको प्रधान सेनापति बना देने पर सब ठीक रहेगा।

दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से प्रार्थना की और उन्होंने स्वीकार लिया। दुर्योधन ने द्रोणाचार्य का प्रधान सेनापति के पद पर अभिषेक कर दिया। दुर्योधन ने दुःशासन, शकुनि, कर्ण आदि से राय लेकर द्रोणाचार्य से कहा कि आप युधिष्ठिर को पकड़कर मुझे सौंप दें। यदि युधिष्ठिर को मार दें, तो उनके भाई हमें मार देंगे, किंतु युधिष्ठिर को जीते जी पकड़ ले आने पर यदि हम उन्हें पुनः जुए में जीत लें, तो उनमें भक्ति रखने वाले उनके भाई उनके सहित पुनः वन में चले जायंगे। फिर मेरा राज्य दीर्घकाल तक सुरक्षित रहेगा।

दुर्योधन की कुटिलता जानकर द्रोणाचार्य ने कहा–यदि युधिष्ठिर अर्जुन के संरक्षण में होंगे तो मैं उन्हें नहीं ला पाऊंगा, और यदि अर्जुन का संरक्षण उन पर नहीं रहा, तो युधिष्ठिर को पकड़कर उन्हें तुम्हारे हाथ सौंप दूंगा। युधिष्ठिर तथा पांडव अपने गुप्तचरों से उक्त बातें जानकर सावधान हो गये।

दोनों तरफ से युद्ध चलने लगा। द्रोणाचार्य ने युद्ध में बड़ा पराक्रम दिखाया। भीम ने मामा शल्य को पराजित किया। द्रोणाचार्य ने पांडव-पक्ष के कई वीरों को मारा। अर्जुन ने आकर कौरव-दल को पछाड़ा (द्रोण पर्व, अध्याय -)।

मीमांसा

युधिष्ठिर के वज्र जुआड़ीपन के व्यसन के कारण दुर्योधन इस स्थिति में भी विश्वास करते हैं कि युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए ललकारने पर वे आज भी खेलने बैठ जायंगे। इसलिए वे उक्त कुटिलता की बातें द्रोणाचार्य से कहते हैं।

. महाभारत युद्ध में रथ में चलने वाले घोड़ों के रंग

त्रिगर्त देश (आज का कुल्लू-कांगड़ा) के संशप्तक नाम के समुदाय के राजा सुशर्मा थे। ये कौरव-पक्ष के योद्धा थे। इन्होंने कौरवों से कहा–

अर्जुन ने हम लोगों को बिना अपराध के सताया है। उनके दुर्व्यवहार की याद कर हमें नींद नहीं आती है। अतएव हम इस युद्ध में अर्जुन के प्रति जो कर पायेंगे वह करेंगे। इसके बाद सुशर्मा के पांच भाइयों–सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु तथा सत्यकर्मा ने भी उनकी बातों को दोहराया। इनके साथ मालव, तुंडिकेर, मावेल्लक, ललित्थ तथा मद्रकगण हजारों वीरों सहित अर्जुन को युद्ध में मारने की प्रतिज्ञा करके आगे बढ़े।

संशप्तकों के साथ अर्जुन का घोर युद्ध हुआ। अर्जुन के सामने संशप्तक नहीं ठहर सके। इसी बीच द्रोणाचार्य ने घोर युद्ध करते हुए पांडव-पक्ष के वीरों–सत्यजित, सतानीक, दृढ़सेन, क्षेम, वसुदान तथा पांचाल-कुमार को मार गिराया। द्रोणाचार्य की मार से पांडव सेना व्यथित हो गयी।

धृतराष्ट्र ने संजय से यह पूछ लिया कि युद्ध में योद्धाओं के रथों के चिह्न कैसे थे। इसके उत्तर में संजय ने कहा–भीम के घोड़े रीक्ष के समान रंग वाले, सात्यकि के घोड़े चांदी के समान रंग वाले, युधामन्यु के घोड़े सारंग (सफेद, नीले और लाल) रंग के, धृष्टद्युम्न के घोड़े कबूतर रंग के, क्षत्रधर्मा के घोड़े लाल रंग के, क्षत्रदेव के घोड़े कमलपत्र रंग के, नकुल के घोड़े कंबोज देशीय तोते के पंख के रंग के, उत्तमौजा के घोड़े मेघ के समान श्याम रंग के, सहदेव के घोड़े चितकबरे रंग के, युधिष्ठिर के घोड़े सफेद रंग किंतु काली पूंछ वाले, द्रोणाचार्य के घोड़े ललाम (मस्तक में श्वेत चिह्न वाले) तथा हरि (गर्दन के बाल बड़े-बड़े तथा शरीर के रोयें सुनहरे), विराट के रथ के घोड़े पाडर फूल के समान लाल-सफेद रंग वाले, केकय राजकुमार पांचों भाइयों के घोड़े वीरबहूटी रंग वाले, शिखंडी के घोड़े मिट्टी के कच्चे बरतन के समान रंग वाले, शिशुपाल के पुत्र के घोड़े चितकबरे रंग वाले, धृष्टकेतु के घोड़े भी चितकबरे रंग वाले, केकय देश के राजकुमार बृहक्षत्र के घोड़े पुआल के धुएं के समान उज्ज्वल-नील रंग के, शिखंडी के पुत्र ऋक्षदेव के घोड़े पद्म रंग वाले, सेनाबिंदु के घोड़े रेशम के समान रंग वाले, काशिराज के घोड़े क्रौंच वर्ण वाले, प्रतिविन्ध्य के घोड़े काली गर्दन तथा श्वेत रंग वाले, भीम-पुत्र सुतसोम के घोड़े उड़द के फूल के रंग वाले, नकुल के पुत्र शतानीक के घोड़े शाल पुष्प रंग वाले, श्रुतकर्मा के घोड़े नीले रंग वाले, श्रुतकीर्ति के घोड़े नीलकंठ पंख के रंग वाले, अभिमन्यु के घोड़े कपिल रंग के, युयुत्सु के घोड़े पुआल के डंठल रंग वाले, वृद्धक्षेम के पुत्र के घोड़े काले रंग वाले, सत्यधृति के घोड़े काले रंग के पैरों वाले, श्रेणिमान के घोड़े रेशम रंग वाले, काशिराज के घोड़े सुवर्ण रंग वाले, धृष्टद्युम्न के घोड़े कबूतर रंग वाले थे। इसी प्रकार लगभग साठ रंग वाले घोड़ों का वर्णन है जिनमें रंगों की पुनरुक्तियां भी हैं (अध्याय -)।

मीमांसा

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"इसी प्रसंग में कथाकार ने पचास प्रकार के घोड़ों का नामोल्लेख किया है, जिसका आधार उनके भांति-भांति के रंग थे। अवश्य ही यह वर्णन गुप्तयुग का ज्ञात होता है। उस समय भारतीय

सेना का संगठन गुप्त सम्राटों ने घुड़सवार पलटनों को रखकर किया और अश्वसेनाओं को सबसे अधिक महत्त्व दिया। वस्तुतः पहली और दूसरी शती में विक्रांत शक सेना में घुड़सवार पलटने ही मुख्य थीं। शकों की इस युद्धकला को भारतीयों ने भी सर्वथा अपना लिया। कालिदास ने रघुवंश के चौथे सर्ग में सरपट चलती हुई इन सेनाओं का बहुत अच्छा चित्र खींचा है। उस समय कंबोज (मध्य एशिया), बाह्लीक (बल्ख), दरद–काश्मीर, गांधार, बनायु, उत्तर–पश्चिम की बना घाटी आदि स्थानों से वहां के व्यापारी बढ़िया नस्ल और रंगों के घोड़े भारतवर्ष में लाकर बेचते थे। इसका कुछ उल्लेख बाण ने हर्षचरित में किया है। बाण की सूची में बनायु, कंबोज, सिंधु आदि देशों के अतिरिक्त सासानी ईरान देशों के घोड़ों का वर्णन है, जिनका उल्लेख कालिदास ने भी पार्शिकों के वर्णन में किया है (पाश्चाते अश्व साधनैः रघु॰ ,)।

"गुप्त युग के साहित्य में द्रोण पर्व का यह वर्णन नितांत मौलिक और अनूठा है। किसी प्रतिभाशाली कवि ने अपने समकालीन वर्णक साहित्य से इस प्रकार के रंगों और नामों का संग्रह करके उसे लगभग साठ श्लोकों में यहां संग्रहीत कर दिया है। यह घोड़ों का व्यापार करने वाले सार्थवाहों की क्रोड पत्रिका–सी जान पड़ती है। इससे मिलती–जुलती और ऐसी ही विचित्र अन्य सूची दंडी की अवंति–सुंदरी नामक सातवीं सदी की रचना में है (पृष्ठ –)। इसका भी आधार कोई ऐसा ही वर्णक रहा होगा। यह उल्लेखनीय है कि चौथी से सातवीं शती तक ही तीन सौ ( ) वर्षों तक घोड़ों की शब्दावली ठेठ भारतीय और संस्कृत प्रधान थी, किंतु आठवीं शती के आरंभ से अरब देश के सौदागर भी घोड़ों की तिजारत में हिस्सा लेने लगे और राष्ट्रकूट राजाओं ने इस विषय में उनको बहुत–सी सुविधाएं दीं। फलतः आठवीं शती के मध्य भाग में अरबी भाषा के नाम भी जैसे बोल्लाह आदि भारतीय बाजारों में चालू होने लगे। अगले तीन सौ वर्षों में स्थिति ऐसी हो गयी कि भारतीय शब्दावली प्रायः जाती रही और उसके स्थान में अरबी के नाम ही चल पड़े, जैसे मानसोल्लास और हेमचंद के अभिधान–चिंतामणि कोश से ज्ञात होता है। अतएव यह और भी भूमिका का विषय है कि द्रोण–पर्व के इस प्रकरण से उस युग की ठेठ भारतीय शब्दावली का एक उज्ज्वल चित्र हमारे सामने आ जाता है।

"इस प्रकार अनेक रंग और रंगतों युक्त अच्छी नस्ल के घोड़ों के लक्षणों की पहचान गुप्त–युग की संस्कृति का विशेष अंग है।

. **भारत सावित्री, पृष्ठ – ।**
. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

गुप्त-युग ईसा के तीन सौ वर्ष बाद का समय है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ईसा के तीन सौ वर्ष बाद के समय में घोड़ों के रंगों का कोई बहुज्ञ पंडित महाभारत-युग के युधिष्ठिर, भीम, अभिमन्यु आदि वीरों से जोड़कर महाभारत महाकाव्य में प्रक्षेप किया।

. अभिमन्यु का घोर युद्ध, अंततः कौरवों से घिरकर मृत्यु

धृतराष्ट्र कौरव के पक्ष के योद्धाओं और सेना को कटते जानकर बहुत संतापित हुए और उन्होंने अपने भाग्य को ही दोषी ठहराया और संजय से कहा–मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधन ने युद्ध के पहले मुझसे कहा था–"पिता जी! इस समय केकय, काशी, कोसल और चेदिदेश के राजा मेरी सहायता के लिए आ गये हैं। वंगवासी भी मेरी ही सहायता में हैं। भूमंडल का बहुत बड़ा भाग मेरे साथ है, अर्जुन के साथ नहीं है।"

संजय! युधिष्ठिर असहाय होकर भी कौरव पर बलवान पड़ रहे हैं। यह सब भाग्य का ही फेर है।

कौरव-पांडव सेना में घोर युद्ध चल रहा है। भीम ने भगदत्त की हाथी-सेना को मार गिराया। अर्जुन ने संशप्तक-सेना के साथ भयानक युद्ध कर उसके अधिकांश भाग को मार डाला। अर्जुन ने संशप्तकों को हराकर कौरव-सेना पर आक्रमण किया। अंततः अर्जुन ने भगदत्त तथा उनके हाथी को मार डाला। इतना ही नहीं, अर्जुन ने वृषक तथा अचल को भी मार डाला और शकुनि को भी हराया; अतएव कौरव-सेना भाग खड़ी हुई।

कौरव-पांडव-सेना में पुनः युद्ध छिड़ गया। अश्वत्थामा ने राजा नील को मार डाला। कौरव-पांडव-सेना में घमासान युद्ध, भीम का भयंकर पराक्रम, फलतः भयंकर संहार। द्रोणाचार्य पर आक्रमण हुआ। अर्जुन और कर्ण परस्पर भिड़ गये। कर्ण के भाई मारे गये। कर्ण और सात्यकि भी आपस में भिड़ गये।

कौरव-योद्धा और सेना का भयंकर संहार देखकर दुर्योधन बहुत दुखी और कुपित हुए। उन्होंने सभी राजाओं को सुनाते हुए द्रोणाचार्य से कहा–द्विजश्रेष्ठ द्रोणाचार्य! यदि आप युधिष्ठिर को पकड़ना चाहें तो पांडव ही नहीं, सारे देवता मिलकर उनकी रक्षा करना चाहें, तो भी कोई आपके सामने टिक नहीं सकता; परंतु आप तो पांडवों के प्रति दयालु हैं, उलटे मुझे ही शत्रु मानते हैं। आपने पहले मुझे आश्वासन दिया और पीछे उसे उलट दिया। श्रेष्ठ पुरुष कभी भी अपने भक्त को निराश नहीं करते हैं।

द्रोणाचार्य दुखी हुए, और उन्होंने कहा कि मैं अपनी शक्ति चले तक तुम्हारे हित में रत हूं। द्रोणाचार्य युद्ध में पुनः लग गये। द्रोणाचार्य ने युद्ध के लिए चक्रव्यूह का निर्माण किया। अभिमन्यु युधिष्ठिर को आश्वासन देकर तथा चक्रव्यूह में घुसकर युद्ध करने लगे। अभिमन्यु ने कौरवों की चतुरंगिणी सेना का घोर संहार किया। अभिमन्यु की मार से कौरव-सेना बहुत कट गयी और शेष भाग खड़ी हुई। अभिमन्यु ने दुःशासन और कर्ण को भी युद्ध में पछाड़ दिया और कर्ण के भाई को मार दिया। कौरव-सेना भाग खड़ी हुई। अंततः अभिमन्यु द्वारा कौरव-योद्धा और सेना के भयंकर संहार के बाद कौरव-महारथियों द्वारा अभिमन्यु घिर गये और मार डाले गये। अभिमन्यु के सहायक जो पांडव-योद्धा थे, उन्हें जयद्रथ ने रोक दिया था, इसलिए वे अभिमन्यु के सहयोग के लिए चक्रव्यूह में नहीं घुस सके। अतएव अभिमन्यु के मारे जाने में जयद्रथ कारण माना गया। अभिमन्यु की मृत्यु के साथ तेरहवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ (अध्याय –)।

. शोक-नाश के लिए पंद्रह राजाओं तथा सोलहवें में परशुराम की मृत्यु का उदाहरण

अभिमन्यु की मृत्यु से युधिष्ठिर अत्यंत दुखी थे। वेदव्यास ने आकर समझाया। उन्होंने कहा–राजा शैव्य के पुत्र सृंजय थे। सृंजय का पुत्र धन से अत्यंत संपन्न था। डाकुओं ने उसे मारकर धन लूट लिया। सृंजय पुत्र-मरण से बहुत दुखी हुए। नारद ने सृंजय को समझाया–महाराज! शोक का त्याग कर, व्याकुलता छोड़ो। कितना ही शोक करो, मरा हुआ लौटता नहीं है। विवेकी मोह-शोक नहीं करते। हे सृंजय! तुम भी भोगों से अतृप्त रहकर ही एक दिन मर जाओगे।

नारद ने कहा–सृंजय! अविक्षित के पुत्र मरुत भी मर गये जो महान प्रतापवान थे। राजा सुहोत्र बहुत वीर और दानशील थे, परंतु वे भी मर गये। राजा पौरव जो महा तेजस्वी थे, वे भी मर गये। उसीनर के पुत्र राजा शिबि जिसने पूरी पृथ्वी को अपने वश में कर लिया था, वे भी मर गये। दशरथ-पुत्र श्री राम जो महान समर्थ थे, वे भी मर गये। राजा भगीरथ जो महान उद्योगशील थे, वे भी मर गये। राजा दिलीप जो महान प्रतापवान थे, वे भी मर गये। राजा युवनाश्व के पुत्र प्रतापवान राजा मांधाता जिनकी सुकीर्ति चारों तरफ फैली थी, वे भी मर गये। नहुष-पुत्र राजा ययाति महान धर्मात्मा थे, वे भी मर गये। नाभाग के पुत्र स्वनामधन्य राजा अंबरीष महामहिम थे, परंतु वे भी मर गये।

राजा शशविंदु महान प्रतापवान थे, परंतु वे भी मर गये। राजा अमूर्तरय के पुत्र राजा गय जो अपनी प्रभुता से तेजवान थे, वे भी एक दिन मर गये। संकृति के पुत्र राजा रंतिदेव जिनके यहां दो लाख रसोइये थे, वे अतिथियों को पुकार-पुकार कर भोजन कराते थे। राजा रंतिदेव स्वर्ण-मुद्राएं दान करते थे, परंतु वे भी मर गये। दुष्यंत-पुत्र प्रतापवान राजा भरत अपने नाम से ही विख्यात हैं, परंतु वे भी मर गये। वेन के पुत्र राजा पृथु अपनी योग्यता से प्रथित (विख्यात) होने से पृथु कहलाये, परंतु वे भी मर गये। परशुराम महाबलवान तथा ब्राह्मण-विरोधियों के संहार करने वाले थे, परंतु वे भी मर गये।

नारद ने उक्त पंद्रह राजाओं और सोलहवें में परशुराम का उपाख्यान तथा उनके मर जाने की बात सृंजय को सुनाकर उनसे कहा कि जब इतने बड़े-बड़े प्रतापवान मर गये, तब तुम अपने पुत्र-मरण को लेकर क्यों शोक करते हो ? वेदव्यास उक्त बातें युधिष्ठिर को सुनाकर चले गये (अध्याय -)।

. अर्जुन द्वारा जयद्रथ का मारा जाना

अर्जुन अन्य योद्धाओं को अभिमन्यु का सहायक बनाकर संशप्तकों से लड़ने के लिए युद्ध क्षेत्र की अन्य दिशा में चले गये थे। जब वे शाम को शिविर में लौटे तब वहां शोक का वातावरण देखकर सन्न रह गये। युधिष्ठिर द्वारा अर्जुन अभिमन्यु के मारे जाने की बात सुनकर घोर दुखी हुए और नाना प्रकार विलाप करते हुए उन्होंने प्रतिज्ञा की कि कल मैं जयद्रथ को अवश्य मार डालूंगा। इसका संदेश बिजली की तरह कौरव-सेना में फैल गया; अतएव जयद्रथ अर्जुन से बहुत डर गया। वह अपनी जान बचाने के लिए अपनी राजधानी भाग जाने की बात भी सोचने लगा; किंतु दुर्योधन ने जयद्रथ की रक्षा के लिए शूरवीरों और सेना का कड़ा प्रबंध किया। जयद्रथ धृतराष्ट्र का दामाद था।

श्रीकृष्ण ने अपने गुप्तचरों से दुर्योधन के शिविर की बात जान ली और अर्जुन से कहा–तुमने मुझसे तथा अपने भाइयों से सलाह लिए बिना आज जयद्रथ को मार डालने की जो प्रतिज्ञा कर ली है, उचित नहीं लगता है। दुर्योधन ने जयद्रथ की रक्षा में कड़ा प्रबंध कर रखा है। अर्जुन ने कहा–संकोच करने की कोई बात नहीं है। कल मैं सिंधु सौवीर-नरेश जयद्रथ को मारकर रहूंगा।

अभिमन्यु के मारे जाने से सर्वाधिक आहत उसकी माता सुभद्रा थी, जो स्वाभाविक था। श्रीकृष्ण ने उसे समझाया और नाना प्रकार से सांत्वना दी। फिर भी सुभद्रा विलाप करती रही।

अर्जुन की जयद्रथ पर विजय के लिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से रात्रि में शिवजी की पूजा करवायी। अंततः सबेरा होते ही रणयात्रा शुरू हुई। अर्जुन ने दुर्मर्षण

की गज–सेना का घोर संहार किया, अतएव कौरव–सेना भाग खड़ी हुई। अर्जुन की मार से सेना सहित दु:शासन भी भाग खड़ा हुआ।

द्रोणाचार्य ने सेनाओं का चक्रशकटव्यूह का निर्माण किया था और उसके द्वार पर वे स्वयं खड़े थे। अर्जुन ने वहां पहुंचकर द्रोणाचार्य का प्रणाम किया और उनसे अभय दान मांगकर जयद्रथ को मारने के लिए आगे बढ़ना चाहा, परंतु द्रोणाचार्य ने हंसते हुए कहा–मुझे जीते बिना तुम जयद्रथ को नहीं मार सकते। अतएव अर्जुन तथा द्रोणाचार्य में भयंकर युद्ध हुआ। अंततः अर्जुन ने द्रोणाचार्य को बचाकर तथा उनसे बचकर व्यूह में प्रवेश करके अनेक महारथियों तथा सेना को मारा।

अर्जुन ने द्रोणाचार्य और कृतवर्मा का दुस्तर सेना–व्यूह तोड़कर कौरव–सेना के महारथी कांबोजराज कुमार सुदक्षिण तथा बलवान श्रुतायुद्ध को जब मार गिराया और कौरव–सेना में भगदड़ मच गयी, तब दुर्योधन बड़ी उतावली से द्रोणाचार्य के पास जाकर कहने लगे–हमारे आप ही बड़े सहारा हैं। अर्जुन व्यूह में घुस गये हैं। जयद्रथ न मारे जायं ऐसा उपाय कीजिए। आप तो सदैव पांडवों के पक्षपाती हैं। मैं आपकी जीविका का सदैव उत्तम प्रबंध करता हूं, तब भी आपकी कृपा मेरे ऊपर नहीं रहती। यदि आपका बल न पाता, तो मैं जयद्रथ को उसके अपने घर जाने देता।

द्रोणाचार्य ने कहा–तुमने जो कुछ कहा, मैं उसको लेकर तुम्हें बुरा नहीं कहता हूं। मैं तुम्हें एक राय देता हूं। तुम भी वीर क्षत्रिय हो। व्यूह में अर्जुन अकेले घुसे हुए हैं किंतु तुम्हारे सहायक अनेक वीर हैं। तुम व्यूह में जाकर अर्जुन को मार गिराओ। मैं बूढ़ा हो गया हूं। अब मैं उतना फुर्तीला युद्ध नहीं कर सकता। इसके बाद उन्होंने सोने का एक अभेद्य कवच दुर्योधन के शरीर पर बांधकर उन्हें अर्जुन से लड़ने के लिए भेजा।

दोनों सेनाओं में घोर युद्ध चलता है। कभी पांडव हारते हैं और कभी कौरव हारते हैं और दोनों पक्षों के बड़े–बड़े वीर तथा सेना के योद्धा मारे जाते हैं। इसी बीच पांडव–पक्षी सात्यकि तथा कौरव–पक्षी भूरिश्रवा में परस्पर तू–तू मैं–मैं होने लगी, फिर दोनों में गुत्थम–गुत्थी तथा घसीटा–घसीटी। सात्यकि जो सात्वत यदुवंशी थे और अर्जुन के शिष्य थे, भूरिश्रवा की लताड़ से शिथिल हो गये। अतएव अर्जुन ने भूरिश्रवा के दाहिने हाथ को बाजूबंद सहित काटकर अलग कर दिया।

भूरिश्रवा ने अर्जुन को धिक्कारा–अर्जुन! मैं दूसरे से लड़ रहा था। मैं तो तुम्हें देख भी नहीं रहा था, ऐसी स्थिति में तुमने मेरे दायें हाथ को काट दिया।

यह क्षत्रिय-धर्म नहीं है। इसके बाद भूरिश्रवा आमरण अनशन में बैठ गया। ऐसी स्थिति में सात्यकि ने भूरिश्रवा के गले पर तलवार चलाकर उसे मार डाला। यह बात जब सेना में फैली, तब सैनिक लोगों ने सात्यकि को महत्त्व नहीं दिया।

अर्जुन की प्रतिज्ञा थी कि सूर्य डूबने के पहले यदि मैं जयद्रथ को न मार पाऊंगा, तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊंगा। जयद्रथ के सहायक बड़े-बड़े महारथी थे। सायंकाल आ रहा था और अभी तक अर्जुन जयद्रथ का कुछ बिगाड़ नहीं सके थे। दुर्योधन प्रसन्न थे।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–जयद्रथ के छह महारथी रक्षक हैं। उनको परास्त किये बिना जयद्रथ को नहीं मारा जा सकता। सूर्य डूबने में थोड़ा समय है। मैं माया (छलकपट) करके सूर्य को ढक दूंगा। इससे जयद्रथ समझ लेगा कि अब अर्जुन शस्त्र त्यागकर अग्नि में प्रवेश कर जायंगे, और वह प्रसन्न हो तुम्हारे सामने आ जायगा। उसी समय तुम उसे मार देना।

ऐसा ही हुआ। श्रीकृष्ण के मायाजाल से मोहित होकर जयद्रथ ने समझ लिया कि सूर्य डूब गया और मेरे मारे जाने का समय समाप्त हो गया है और वह प्रसन्न होकर अर्जुन के सामने आ गया। अर्जुन ने घोर बाण-वर्षा करके रक्षक-महारथियों को खदेड़ दिया। तत्पश्चात श्रीकृष्ण के संकेत से जयद्रथ को मारकर धराशायी कर दिया।

जयद्रथ के पिता वृद्धक्षत्र थे। वे सिंध की राजगद्दी पर जयद्रथ को बैठाकर स्वयं तप में लगे थे। उस समय वे संध्योपासना में लगे थे। अर्जुन ने बाण से जयद्रथ का सिर काटकर उसके पिता वृद्धक्षत्र की गोद में गिराया। इस घटना से आहत होकर वृद्धक्षत्र ने भी शरीर छोड़ दिया (अध्याय –)

मीमांसा

युद्ध स्वतः क्रूर कर्म है। उसमें छल-कपट भी बराबर चलता है। जिन्हें भागवत लोग भावुकतावश नर-नारायण कह डाले हैं, वे इतना नीचे उतरकर जघन्य कर्म करते हैं।

. लंबे युद्ध के बाद कर्ण की अमोघ शक्ति से घटोत्कच मारा गया

जयद्रथ के मारे जाने पर पांडव-समाज में प्रसन्नता की लहर उठी और कौरव-समाज में शोक की लहर। यही है संसार का राग-द्वेष! दुर्योधन बहुत

दुखी है। वह अपनी हार देखकर व्याकुल है और द्रोणाचार्य को दोष देता है कि वे पांडव के प्रति दयावान हैं। द्रोणाचार्य ने कहा–दुर्योधन! तुम क्यों मुझे वचन-बाणों से छेदते हो? अर्जुन का सामना करना कठिन है।

कर्ण ने भी दुर्योधन से कहा–भाई! तुम द्रोणाचार्य की निंदा न करो। वे तो अपनी शक्ति और उत्साह से युद्ध करते हैं; किंतु वे बूढ़े हो गये हैं। वे तेज चलने में भी असमर्थ हैं। अतएव उनको दोष नहीं देना चाहिए।

कौरव–पांडव की सेना का युद्ध पुनः चलने लगा। दुर्योधन पराजित होते हैं। पुनः युद्ध चलता है। आज रात को भी युद्ध चल रहा है। पांडव–सैनिक द्रोणाचार्य पर आक्रमण करते हैं और द्रोणाचार्य पांडव–सेना का संहार करते हैं। द्रोणाचार्य शिवि को मार देते हैं, तो भीम कलिंग राजकुमार तथा ध्रुव–जयरात, दुष्कर्ण और दुर्मद को मार डालते हैं। सोमदत्त तथा सात्यकि भिड़ जाते हैं और सोमदत्त पराजित हो जाते हैं। अश्वत्थामा पांडव–पक्षी एक अक्षौहिणी सेना का तथा घटोत्कच के पुत्र तथा द्रुपद के पुत्रों को मार गिराते हैं। तो भीम बाह्लीक, तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों, शकुनि के सात योद्धाओं तथा उनके पांच भाइयों को मार देते हैं। गुरु द्रोणाचार्य से शिष्य–युधिष्ठिर युद्ध करते हैं और युधिष्ठिर विजयी होते हैं।

दुर्योधन चिंतित हैं। कर्ण उन्हें सांत्वना देते हैं और अर्जुन सहित पांडव–सेना का संहार करने की बात करते हैं। कृपाचार्य कर्ण को फटकारते हैं। कर्ण कृपाचार्य को फटकारते हैं और कहते हैं कि तुम एक तो ब्राह्मण हो, दूसरी बात बूढ़े हो गये हो। तुम में युद्ध करने की शक्ति कहां है ? याद रखो, यदि तुम मुझे अप्रिय लगने वाली बात कहोगे तो मैं तलवार से तुम्हारी जीभ काट लूंगा। ब्रह्मन! तुम जिन पांडवों की प्रशंसा करते हो उनके भी तो सैकड़ों योद्धा मारे गये हैं। कौरव तथा पांडव दोनों की सेनाएं प्रतिदिन नष्ट हो रहीं हैं। अतएव मुझे इसमें पांडवों की कोई विशेषता नहीं दिखायी देती।

अश्वत्थामा को कर्ण द्वारा अपने मामा कृपाचार्य का अपमान सहन नहीं हुआ, अतएव वह तलवार लेकर कर्ण को मारने के लिए उन पर टूट पड़ा। दुर्योधन ने बीच–बचाव करके अश्वत्थामा को मनाया। पांडव और पांचाल कर्ण पर हमला बोल दिये। कर्ण ने घोर युद्ध किया, किंतु अर्जुन ने कर्ण को पराजित कर दिया। दुर्योधन ने अश्वत्थामा को उकसाया कि वह पांचालों को मार गिराये।

अश्वत्थामा ने कहा–दुर्योधन! पांडव मुझे तथा मेरे पिता को अत्यंत प्रिय हैं और इसी प्रकार हम पिता–पुत्र उनको प्रिय हैं। परंतु युद्ध–भूमि में हमारा यह भाव नहीं रहता है। हम अपने प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध–स्थल में युद्ध करते

हैं; परंतु तुम तो लोभी, छली-कपटी, अभिमानी और सब पर संदेह करने वाले हो। तुम्हारा मन पापी है, इसलिए तुम हम पर संदेह करते हो। कुरुनंदन! मैं भी अपने जीवन का मोह छोड़कर युद्ध में जा रहा हूं। अंततः अश्वत्थामा पांचालों से युद्ध में भिड़ गया और उसने धृष्टद्युम्न के रथ, सारथि सबको नष्ट करके उसकी सेना को खदेड़ दिया। इधर भीम और अर्जुन ने अपने आक्रमण से कौरव-सेना को खदेड़ दिया। सात्यकि ने सोमदत्त को मार डाला। द्रोणाचार्य और युधिष्ठिर गुरु-शिष्य भिड़ गये। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को राय दी कि तुम द्रोणाचार्य से दूर रहो।

रात का युद्ध चल रहा है। दोनों सेनाओं में मशालों से उजाला करने का प्रयास भी चल रहा है। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध चल रहा है। दुर्योधन ने द्रोणाचार्य की रक्षा के लिए सेना का प्रबंध कर रखा है। कृतवर्मा ने युद्ध में युधिष्ठिर को धत्त बोला दिया। अतएव युधिष्ठिर युद्ध से भाग खड़े हुए।

घटोत्कच और अश्वत्थामा का घोर युद्ध चला। भीम और दुर्योधन भिड़ गये। अंततः दुर्योधन भाग खड़े हुए। कर्ण ने सहदेव को हराया। शल्य ने विराट के भाई शतानीक को मार डाला। विराट युद्ध से भाग निकले। अर्जुन की मार से अलंबुष भाग खड़े हुए। नकुल-पुत्र शतानीक चित्रसेन को तथा वृषसेन द्रुपद को पराजित करते हैं और प्रतिबिंध्य तथा दुःशासन का युद्ध चलता है। नकुल शकुनि को हराते हैं तथा शिखंडी कृपाचार्य से जा भिड़ते हैं। सात्यकि दुर्योधन को, अर्जुन शकुनि और उलूक को और धृष्टद्युम्न कौरव-सेना को पराजित करते हैं।

अपनी सेना बराबर हारती देखकर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य और कर्ण से कहा– सिंधनरेश जयद्रथ के मारे जाने पर आप दोनों वीरों ने रात में भी युद्ध जारी रखा। मेरी विशाल सेना कटती जा रही है। आप लोग समर्थ होते हुए भी हाथ-पर-हाथ धरे हुए बैठे रहने वाले के समान अपना चरित दिखा रहे हैं। यदि आप लोग मुझे त्याग देना ही उचित समझते थे, तो उस समय यह नहीं कहना चाहिए था कि "हम पांडवों को युद्ध में जीत लेंगे।" उसी समय यदि आप मेरा समर्थन न करते तो मैं पांडवों के साथ वैर न करता जो योद्धाओं के विनाश का कारण बना हुआ है।

दुर्योधन के उक्त वाग्बाणों से आहत होकर कुचले हुए सर्प की भांति फुफकारते हुए द्रोण और कर्ण पांडव-सेना पर टूट पड़े। उनके भयंकर रणकौशल से पांडव-सेना आहत होकर भाग खड़ी हुई। भीम ने पांडव-सेना को लौटाया और अर्जुन-भीम अपनी सेना लेकर कौरव-सेना पर युद्ध में टूट पड़े।

कर्ण ने धृष्टद्युम्न और पांचालों को पछाड़ दिया। युधिष्ठिर घबरा गये। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने घटोत्कच को भभकी देकर कर्ण से युद्ध करने के लिए लगा दिया। घटोत्कच और कर्ण का युद्ध चलने लगा। इसमें जटासुर का पुत्र अलंबुष मारा गया। घटोत्कच का कर्ण से घोर युद्ध चल ही रहा था, इसी बीच में राक्षसराज अलायुध अपनी सेना लेकर दुर्योधन के सहयोग में आ गया। उसने दुर्योधन से कहा कि मैं भीम को मारना चाहता हूं और घटोत्कच को भी। भीम ने पहले हमारा अपमान किया है। रात्रि युद्ध में अलायुध दुर्योधन का सहयोगी हो गया। उसे पांडवों का पुराना वैर खटकता था। अंततः भीम और अलायुद्ध का घोर युद्ध हुआ। अलायुद्ध भीम और घटोत्कच को तो नहीं मार पाया, अपितु घटोत्कच के द्वारा वह स्वयं मार डाला गया। पांडव-सेना में दीपावली मनायी गयी और कौरव-सेना में उदासी छा गयी।

उक्त घटना से दुर्योधन को बड़ा पश्चाताप हुआ। फिर कर्ण ने युद्ध सम्हाला और पांडव-पक्षी घटोत्कच से घोर युद्ध हुआ। अंततः कर्ण द्वारा घटोत्कच मारा गया। घटोत्कच जब कर्ण के बाण से आहत होकर गिरने लगा तब उसने कौरवों की एक अक्षौहिणी सेना पीस डाली। घटोत्कच के मरने पर पांडव-सेना में शोक छा गया, परंतु श्रीकृष्ण प्रसन्नता में नाच उठे– *'ननर्त हर्ष संवीतः* (,)। श्रीकृष्ण के बेमौके की प्रसन्नता से क्षुब्ध होकर अर्जुन ने उसका कारण पूछा। श्रीकृष्ण ने कहा–कर्ण के कवच-कुंडल इंद्र ने पहले ले लिए हैं। इंद्र की दी हुई एक अमोघ शक्ति कर्ण के पास थी। उससे तुम्हारे लिए खतरा था, किंतु कर्ण ने उसका प्रयोग घटोत्कच पर करके उसे मार डाला; और उसके साथ वह अमोघ शक्ति समाप्त हो गयी। अर्जुन! अब तुम कर्ण के भय से छूट गये हो। तुम कर्ण के लिए चिंता न करो। मैं उसको मारने का उपाय तुम्हें बताऊंगा, और भीम को उपाय बताऊंगा जिससे वे दुर्योधन को मार देंगे (अध्याय –)।

मीमांसा

कथा में दैवी-कल्पनाएं बीच-बीच में चलती हैं। इंद्र की दी हुई शक्ति तथा जन्मजात कवच-कुंडल आदि ऐसे ही प्रपंच हैं। यह हो सकता है कि कर्ण के पास कोई ऐसा अमोघ अस्त्र रहा हो जो एक बार के प्रयोग में समाप्त हो जाने वाला रहा हो और उसका प्रयोग घटोत्कच पर हो जाने के बाद श्रीकृष्ण ने अर्जुन के लिए अच्छा माना हो, क्योंकि कर्ण अर्जुन का प्रतिद्वंद्वी था। कौरव कर्ण से बारबार कहते थे कि उस शक्ति का प्रयोग श्रीकृष्ण या अर्जुन पर करो; परंतु अभी तक कर्ण ने उसका प्रयोग उन पर नहीं किया था। बीच में घटोत्कच

के प्रबल युद्ध से प्रभावित होकर कर्ण ने उस शक्ति का प्रयोग घटोत्कच पर ही कर दिया। घटोत्कच का मरते समय कौरवों की सेना पर गिरकर एक अक्षौहिणी सेना को पीस डालना भी निरी अतिशयोक्ति है और अद्‌भुत रस उत्पन्न करने वाली है।

. रात्रि–युद्ध, दुर्योधन–द्रोण में व्यंग्यात्मक नोक–झोंक तथा विराट और द्रुपद का मारा जाना

से अध्याय तक छल–छद्म की बात चलती है। इसके बाद बात आती है–रात्रि में युद्ध चल रहा है। सैनिक थकित और निद्रा से अंधे हो रहे हैं। ऐसा देखकर अर्जुन ने उच्च स्वर से कहा–समस्त योद्धाओं एवं सैनिको! सब लोग दो घड़ी सो जाओ, फिर चंद्रमा के उदय होने पर युद्ध करना। सेना यह बात सुनकर प्रसन्न हुई और सब सो गये। कौरव–सेना ने भी इसे अच्छा माना, और वह भी सो गयी। जब चंद्रमा उदय हुआ, तब पुनः युद्ध शुरू हो गया।

दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के पास आकर कहा–गुरुदेव! शत्रु यदि सोते हों, तो उन पर दया नहीं करना चाहिए; परंतु मैंने आपके डर से ऐसा नहीं किया। फल यह हुआ कि पांडव–सेना विश्राम करके पुनः लड़ने के लिए बलवान हो गयी। आप शस्त्र–विशेषज्ञ और अजेय हैं। आप चाहें तो तुरंत पांडवों का विनाश कर सकते हैं, परंतु आप तो उन पर दयालु हैं। यद्यपि पांडव आपसे भयभीत रहते हैं, तथापि वे आपके शिष्य हैं, इस बात को मन में रखकर अथवा मेरे दुर्भाग्य–वश आप उनकी उपेक्षा करते हैं।

द्रोणाचार्य ने कहा–दुर्योधन! मैं बूढ़ा हूं, तथापि युद्ध में अपनी पूरी शक्ति लगाता हूं। लगता है कि तुम्हारी विजय के लिए मुझे नीच काम भी करना पड़ेगा। मैं तुम्हारे कहने से शुभ या अशुभ कुछ भी करूंगा। मैं सत्य कहता हूं कि पांचालों को मारे बिना कवच नहीं उतारूंगा। जो तुम अर्जुन को थका हुआ समझते हो, यह तुम्हारी भूल है। अर्जुन का बल अपार है।

दुर्योधन ने कुपित होकर कहा–आचार्य! आज मैं, कर्ण, दुःशासन और शकुनि को साथ लेकर घोर युद्ध करके अर्जुन को मार डालूंगा। आप चुपचाप देखते रहिए, क्योंकि अर्जुन सदा आपके प्रिय शिष्य हैं।

द्रोणाचार्य ने हंसते हुए व्यंग्य में दुर्योधन की बात का अनुमोदन किया और कहा–'तुम्हारा कल्याण हो।' इसके बाद उन्होंने पुनः कहा–दुर्योधन! तुम्हारे मन में हर क्षण पाप रहता है। इसलिए तुम अपने हितकारी पर सदैव संदेह करते रहते हो और उन्हें कटु सुनाते रहते हो। तुम भी तो कुलीन क्षत्रिय हो। जाओ,

जल्दी अर्जुन को मारकर आ जाओ। तुम अन्य क्षत्रियों को क्यों कटवा रहे हो ? तुम इस वैर की जड़ हो, तो स्वयं क्यों नहीं अर्जुन को मार गिराते हो ? कपट-जुआ के खेलाड़ी तुम्हारे मामा शकुनि भी तो क्षत्रिय ही हैं। क्यों न वे अर्जुन को मार गिरावें ? ये छल-विद्या के सागर हैं। ये तो पांडवों को तुरंत जीत लेंगे। तुमने धृतराष्ट्र को सुनाते हुए भरी सभा में अनेक बार यह बात कही है कि मैं, कर्ण और दुःशासन समस्त पांडवों को मार डालेंगे। तो अपनी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करो। सत्यवादी बनो। यदि तुम अर्जुन को मार डालो, तो तुम्हारी बड़ी प्रशंसा होगी। तुमने बहुत-सा दान किया है, भोग भी खूब कर लिया है, स्वाध्याय भी कर लिया है, मनमाना ऐश्वर्य भी पा लिया है। तुम देवताओं, ऋषियों तथा पितरों के ऋण से मुक्त हो गये हो। तुम संसार के समस्त कर्तव्य कर्म करके कृतकत्य हो गये हो। अतएव डरो मत, अर्जुन से भिड़ जाओ।

द्रोणाचार्य व्यंग्य भरी उक्त बातें कहकर स्वयं युद्ध की तरफ मुड़ गये। पांडवों ने द्रोणाचार्य पर आक्रमण किया। किंतु द्रोणाचार्य के रणकौशल देखकर पांडव सेना कांप गयी। द्रोणाचार्य द्वारा द्रुपद के तीन पौत्र मारे गये। इसके साथ द्रोणाचार्य ने युद्ध में चेदि, केकय, सृंजय तथा मत्स्य देश के सारे वीरों को परास्त कर दिया। द्रुपद और विराट ने द्रोणाचार्य पर हमला किया, तो वे दोनों द्रोणाचार्य से मारे गये। यहां आकर प्रसिद्ध पांडव-पक्षी विराट और द्रुपद का अंत हुआ। *'द्रुपदं च विराटं च प्रेषयामास मृत्यवे।'* द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने प्रतिज्ञा की कि मैं अब द्रोणाचार्य को मारकर रहूंगा (अध्याय -)।

. दुर्योधन और सात्यकि का वार्तालाप तथा द्रोणाचार्य की हत्या

युद्ध-स्थल सैनिकों की लाशों से पटा है। सर्वत्र रक्त-मांस का कीचड़ है। नकुल ने दुर्योधन को पराजित कर दिया। दुःशासन और सहदेव का, कर्ण और भीम का तथा द्रोणाचार्य और अर्जुन का घोर युद्ध होने लगा। धृष्टद्युम्न ने दुःशासन को हरा दिया और द्रोणाचार्य पर धावा बोला। नकुल और सहदेव धृष्टद्युम्न की रक्षा में हैं।

चलते युद्ध में कुरुवंशी दुर्योधन और मधुवंशी सात्यकि आमने-सामने हो गये। दोनों एक दूसरे को देखकर हंस पड़े। उन दोनों को बचपन की सारी बातें याद हो गयीं। वे दोनों एक दूसरे को देखकर मुस्कुराते हैं। दुर्योधन ने सात्यकि

. **द्रोण पर्व, अध्याय , श्लोक ।**

से कहा–सखे! क्रोध को धिक्कार है, लोभ को धिक्कार है, मोह को धिक्कार है, अमर्ष को धिक्कार है, इस क्षत्रियोचित बरताव को धिक्कार है और इस बल को धिक्कार है! हम दोनों लोभ, क्रोध आदि के अधीन होकर एक-दूसरे की जान लेने के लिए तत्पर हैं। हम दोनों पहले एक दूसरे को प्राणप्रिय मानते थे। हम दोनों का बचपन में जो परस्पर प्रेम रहा, आज वह जीर्ण हो गया है। आज का यह युद्ध क्रोध और लोभ के अतिरिक्त क्या है ?

सात्यकि ने बाणों को ऊपर उठाते हुए तथा हंसते हुए कहा–राजकुमार! न तो वह सभा है और न आचार्य का आश्रम है जहां हम इकट्ठे होकर खेलते थे।

दुर्योधन ने कहा–मित्र! हमारा बचपन का वह खेल कहां चला गया और यह युद्ध कहां से आ धमका ? हाय, काल का उल्लंघन करना कठिन है। हम धन के लिए यहां इकट्ठे होकर कट-मर रहे हैं। ऐसे धन से क्या लाभ है ?

सात्यकि ने कहा–राजन! क्षत्रियों का यही सनातन आचार रहा। वे गुरुजनों से भी युद्ध करते हैं। यदि मैं तुम्हें प्रिय हूं तो मुझे तुम शीघ्र मार डालो। मेरी अच्छी गति होगी। मैं स्वजनों का महान संकट नहीं देखना चाहता।

अंततः दोनों युद्ध में लग गये। पूर्व प्रेम की बात याद आयी और चर्चा हुई, फिर सब चित्त से उतर गया और युद्ध करने लगे। कर्ण और भीम लड़ने लगे और अर्जुन ने कौरवों पर हमला किया। द्रोणाचार्य की भीषण मार से पांडव-सेना व्यथित हो गयी।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–धनंजय! जब तक द्रोणाचार्य के हाथ में शस्त्र रहेगा और वे जब तक युद्ध करेंगे, तब तक उन्हें इंद्र भी नहीं हरा सकते। जब वे हथियार डाल देंगे तभी मारे जा सकते हैं। अतएव पांडवो! "गुरु का वध करना उचित नहीं है।" इस धर्म-भावना को छोड़कर उन पर विजय पाने के लिए प्रयत्न करो। मेरा विश्वास है कि अश्वत्थामा के मारे जाने की खबर सुनकर द्रोणाचार्य युद्ध नहीं कर सकेंगे। अतएव कोई जाकर उनसे कहे कि "अश्वत्थामा युद्ध में मारा गया।"

अर्जुन को श्रीकृष्ण की उक्त बात अच्छी नहीं लगी, किंतु अन्य पांडव इसे पसंद किये। युधिष्ठिर थोड़ा हिचककर राजी हो गये। पांडव-सेना में एक हाथी था। उसका नाम भी अश्वत्थामा था। भीम ने उस पर गदा का प्रहार करके मार डाला और लजाते हुए उन्होंने द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा–अश्वत्थामा युद्ध में मारा गया। वस्तुतः अश्वत्थामा नाम का हाथी मारा गया था, किंतु भीम ने झूठी बात का प्रचार किया कि द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा मारा गया।

द्रोणाचार्य पुत्र-मरण सुनकर व्यथित हुए, परंतु तुरंत उन्होंने अपने को सम्हाला और इस खबर की सच्चाई वे युधिष्ठिर से जानना चाहे; क्योंकि वे मानते थे कि युधिष्ठिर झूठ नहीं बोलेंगे। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को साधा और उनसे कहा–यदि द्रोणाचार्य बलपूर्वक युद्ध करें तो तुम्हारी सेना आधे दिन में नष्ट हो सकती है। अतएव हे युधिष्ठिर! द्रोणाचार्य से आप हम लोगों को बचाओ। इस समय असत्य-भाषण सत्य से बढ़कर उत्तम है। भीम ने भी युधिष्ठिर से कहा–मैंने द्रोणाचार्य के सामने कहा कि अश्वत्थामा युद्ध में मारा गया, परंतु उन्होंने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। अतएव आप श्रीकृष्ण की बात मानकर द्रोणाचार्य से कह दें कि 'अश्वत्थामा मारा गया।'

भीम की उक्त बात सुनकर तथा श्रीकृष्ण की प्रेरणा से युधिष्ठिर की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी, और उन्होंने चालाकी से सत्य कहने का ढकोसला करते हुए इस प्रकार कहा 'अश्वत्थामा मारा गया' यह बात तो उच्च स्वर में कही, और 'हाथी मारा गया' यह धीरे से कहा। इस दुष्कर्म से युधिष्ठिर का तेज जाता रहा।

द्रोणाचार्य युधिष्ठिर द्वारा अपने पुत्र का मारा जाना सुनकर जीवन से निराश हो गये। उनकी चेतनाशक्ति लुप्त होने लगी। वे शस्त्र त्यागकर बैठ गये। इसी बीच उनके पुराने वैरी धृष्टद्युम्न ने तलवार से उनका गला काट दिया (अध्याय –)।

मीमांसा

भीष्म धोखा देखकर मारे गये। सामने शिखंडी को बैठाकर पीछे से उन पर बाण चलाया गया। द्रोणाचार्य के साथ तो घोर अन्याय किया गया। श्रीकृष्ण और पांडवों द्वारा यह अत्यंत निंदनीय काम हुआ। ये भक्तों द्वारा नर-नारायण कहलाने वाले अनंत ब्रह्मांड के सृजक, पालक तथा संहारक कहलाने वाले द्रोणाचार्य पर विजय नहीं कर पाये, तब उन्हें घृणित ढंग से धोखा देकर मारे। मिथ्या महिमा और अहंकार की यह पोलपट्टी है।

. धृष्टद्युम्न और सात्यकि की तू-तू मैं-मैं, अश्वत्थामा का पांडव-सेना का संहार और शिव महिमा के साथ द्रोण पर्व समाप्त

द्रोणाचार्य के मारे जाने पर शकुनि, मद्रराज शल्य, कर्ण, कृपाचार्य आदि बचे हुए सभी महारथी सेना सहित भाग खड़े हुए। दुर्योधन भी युद्ध से खिसक

गये। अश्वत्थामा को कृपाचार्य से अपने पिता द्रोणाचार्य के मारे जाने का सारा भेद जानने में आया। इस जघन्य सूचना से अश्वत्थामा दुखी और कुपित हो गये। फिर अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न को मारने की प्रतिज्ञा की।

धृष्टद्युम्न ने अपने छलपूर्ण जघन्य कृत्य को सही बताया। सात्यकि ने उसे धिक्कारा और कहा कि तू और तेरा भाई शिखंडी दोनों पांचाल पापाचारी हैं। शिखंडी ने भीष्म की हत्या की और तूने द्रोण की।

धृष्टद्युम्न ने भी सात्यकि के ऊपर नहला पर दहला जड़ा और कहा– सात्यकि! तू कौन बड़ा सदाचारी है? भूरिश्रवा आमरण अनशन करके प्राण त्यागने के लिए बैठे थे, और तूने उनका सिर काट लिया। तू कितना नीच है! धृष्टद्युम्न और सात्यकि की इस प्रकार की गदहलत्ती का भीम, सहदेव, युधिष्ठिर तथा श्रीकृष्ण ने निवारण किया और उन लठैतों को अलग किया।

द्रोणाचार्य की हत्या से कौरवों का क्रोध भभक पड़ा। अश्वत्थामा तो भभके ही थे, अतएव दोनों दलों में घोर संग्राम छिड़ गया। अश्वत्थामा ने पांडव-सेना पर नारायण-अस्त्र का प्रयोग किया जिसे आज का अणुबम समझना चाहिए। पांडव-सेना का घोर विनाश होने लगा। श्रीकृष्ण ने भीम को रथ से उतारकर उनकी रक्षा की। अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न को पराजित कर दिया और सात्यकि ने दुर्योधन, कर्ण, कृपाचार्य और वृषसेन को युद्ध से खदेड़ दिया। अश्वत्थामा ने मालव, पौरव और चेदिदेश के युवराज को मार गिराया। अश्वत्थामा ने भीम से घोर युद्ध किया, फलतः पांडव सेना भाग खड़ी हुई। अश्वत्थामा के आग्नेयास्त्र के प्रयोग से एक अक्षौहिणी पांडव-सेना का संहार हुआ।

लेखक ने इसी बीच अकस्मात वेदव्यास को प्रकट कर दिया और उनके मुख से श्रीकृष्ण की भगवत्ता का वर्णन करा डाला और शिव जी की महिमा गवायी। इस द्रोण पर्व के अंतिम दो सौ दो ( )वें अध्याय में वेदव्यास के द्वारा अर्जुन के सामने शिवजी की महिमा में लंबा व्याख्यान है। कथा ऐसी है– अर्जुन ने कहा–जब मैं युद्ध करता था तब मेरे सामने एक अग्निमय पुरुष चलते हुए दिखायी देते थे। उनके हाथ में त्रिशूल था। वे जिधर जाते उधर मेरे शत्रु नष्ट हो जाते थे। उनके पैर पृथ्वी पर नहीं पड़ते थे। महर्षि! बताइए, वे कौन थे?

वेदव्यास ने कहा–वे सर्वेश्वर शंकर भगवान थे। जिस सेना का संरक्षण द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण आदि कर रहे थे, उसका विनाश भगवान शंकर के बिना कौन कर सकता है? भगवान शंकर ने ही तुम्हें विजय दिलायी है। तुम उन्हीं की शरण में जाओ। यहां लगभग एक सौ चालीस श्लोकों में शिवजी की

महिमा का बखान किया गया है। फिर अंत में इस शिव–स्तोत्र तथा द्रोण पर्व का पाठ–फल बताकर द्रोणपर्व समाप्त होता है। द्रोणाचार्य ने पांच दिनों का युद्ध करके अपनी जीवन लीला समाप्त की (अध्याय –)।

मीमांसा

किसी शिवभक्त पंडित ने इस पर्व के अंत में वेदव्यास को एकाएक प्रकट करके उनके मुख से शिव की महिमा कहवा डाली है। शिव आदि कल्पित ईश्वरों की यही महिमा है कि वे मनुष्यों का संहार कर सकते हैं, उनकी बुद्धि बदलकर उन्हें कल्याण पथ में नहीं लगा सकते। ईश्वर–भक्त प्रायः मरने–मारने में स्वर्ग लोक की प्राप्ति बताते हैं। आज के आतंकवादियों का भी एक वर्ग स्वर्ग–प्राप्ति का झांसा देकर युवकों से आत्मघाती बम–विस्फोट कराके मनुष्यों की हत्या करवाता है। यह वर्ग अपने को ईश्वर–भक्त कहता है।